प्रकाशक—
सत्यव्रत शर्मा विद्यासागर
स्टेण्डर्ड बुक पब्लिशर्स
११-ए, सैयदसाली लेन,
कलकत्ता

प्रथम संस्करण
मूल्य २)

मुद्रक—
उमादत्त शर्मा
'रत्नाकर प्रेस'
११-ए, सैयदसाली लेन
कलकत्ता

गौरवमुकुट

'न हि कल्याण कृत कश्चित्'

(१)

औ-डेढ़ सौ झूपड़ोंके छोटेसे गाँवके किनारे बहनेवाली 'रेवती' नामक नदीके तटपर प्रज्वलित चितासे अग्निकी लपटें उठ रही थीं और उसके पास खड़ा एक तगड़ा-सा आदमी मोटा बांस हाथमें लिये, चिताकी लकड़ियोंको ठीक कर रहा था। पाँच-सात आदमी दूर बैठे तमाखू पीते और गप-शप कर रहे थे। श्मशानभूमिके पास होकर जानेवाली सड़कपर तीन-चार हाड-पंसली निकली हुई गाय चली जा रही थी। कुछ दूर खड़े हुए जीर्ण पीपलके पेड़पर एक गीध बैठा बोल रहा था।

तमाखू पीनेवाले आदमियोंमेंसे एक आदमी चिलमसे दम खींच कर खड़ा हो गया। उठते ही उसकी दृष्टि उस आदमीपर पड़ी जो चिताकी लकड़ीको ठीक कर रहा था। देखा, वह चक्कर खाकर गिर रहा है! तमाखू पीनेवाला उसके पास पहुंचा, उठाया उसके मुंह पर

नदीसे पानी लाकर छिड़का और जब वह होशमें आ गया, तो पूछा—क्या हो गया है ?

दामोदरने उत्तर दिया—कुछ नहीं।

—देखो काका, अब तुम बैठ जाओ, दिन भरके भूखे हो। ऐसे काम नहीं चला करता। अभी चितामें गिर पड़ते तो क्या होता ? मरनेवालेके पीछे क्या हमें भी मर जाना उचित है ?

'ठीक है, ठीक है' कहते हुए और लोग भी उसके पास आ पहुंचे और दामोदरको पकड़कर एक ओर बैठा दिया।

इनके बाद सब लोगोंने मिलकर चितापर जल छिड़ककर उसे ठंढा किया, दामोदरको नहलाया और गाँवकी ओर चल पड़े। चुप-चाप चलनेवाले इन आठ-दस आदमियोंके शरीरको अन्धकार धीरे-धीरे निगल रहा था।

अचानक एक आदमी बोला—बेचारे दामोदर पर मुसीबत आ पड़ी। मकानका मकान गया और औरतसे भी हाथ धोने पड़े !

दूसरा बोला - और बेचारी छ वर्षकी फूल जैसी लड़कीका अब कैसे निभाव होगा ? मालूम होता है, ईश्वरके यहां भी न्याय नहीं है।

दामोदर ऐसी घबड़ाई हुई आवाजसे बोला, मानों उसपर कोई नई आफत आ रही हो—ना-ना, ऐसा मत कहो। भगवान्की इच्छाका किसीको पता नहीं चलता।

दामोदरका साथी युवक झल्लाकर बोला—भगवान्की इच्छाके क्या माने ?

दामोदरने कुछ गम्भीर आवाजसे कहा—शंकर, तू बम्बई जाकर

बहुत चालाक हो गया है, यह देखकर मैं प्रसन्न हूं, परन्तु भगवान्‌की इच्छाको समझने योग्य हम लोगोंमें दिमाग नहीं है, इसलिये उसमें दखल नहीं देना चाहिये।

शंकरने तिरस्कारपूर्ण स्वरसे कहा—हम लोग तो उसके काममें दखल न दें और वह हमारी गरीबीके कीचड़से भरे हुए हाथ, अपनी छ वर्षकी लड़कीके आंसुओंसे बैठे,-बैठे धोया करे!

शंकरके स्वरसे उत्पन्न हुए व्यंगने तमाम साथियोंको गूंगा-सा बना दिया। परन्तु दस-पांच मिनिट बाद एक आदमीने हिम्मत करके कहा—आज तू ताड़ी-वाड़ी तो नहीं पी आया है?

शंकर ठहाका मारकर हंस पड़ा और तीखे स्वरसे बोला—हाँ, मैंने तो ताड़ी पी है, इसमें सन्देह नहीं, पर तुम लोग तो अन्ध श्रद्धा की अफीम खाकर अपने दु:ख और कष्टोंको भूलनेकी कोशिश करते हो। संसारके धूर्त और बदमाशोंके द्वारा अपने ऊपर लादी हुई असमर्थताको भगवान्‌के नामके परदेमें छिपाकर तुम लोग खुद ही बेवकूफ बनते हो और मैं इन लोगोंकी नास्तिकता और अपने भाइयों के अभावके युद्धमें आस्तिकताकी ताड़ी पीकर प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करता हूं। सच बात तो यह है, कि संसारमें प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी प्रकारके नशेके सहारे ही अपना जीवन बिताता है।

कुछ दिन तक बम्बई रहकर लौटे हुए इस नये नास्तिकसे वाद-विवादमें पार पाना कठिन काम है, यह सोचकर सब लोग चुप होगये। शङ्कर भी दामोदरकी मनोदशाका ध्यानकर चुप होगया।

(२)

शङ्कर छब्बीस-सत्ताईस वर्षका युवक था। इसका पिता गाँवकी दृष्टिसे कुछ धनवान और खाता-पिता समझा जाता था, इसलिये उसने अपने लड़केको पासके कसबेके स्कूलमें तीन-चार जमात तक पढ़ा दिया था। शङ्कर जब सत्रह-अठारह वर्षका हुआ, तो एक दिन उसे अचानक मालूम हो गया, कि उसके पिताकी सारी प्रतिष्ठा, तमाम आबरू लाला चन्दनमल सेठकी आंखके एक साधारण-से इशारेके साथ आंख-मिचौनी खेल रही है और अपने जीवनकी घड़ियां गिन रही है। इससे उसके हृदयपर बड़ी चोट लगी और वह चिन्तित रहने लगा।

एक दिन उसके हाथ माँके कुछ रुपये लग गये। बस फिर क्या था, वह पासके गांवके एक आदमीके साथ सीधा बम्बई चला गया। यद्यपि वह जानता था, कि मैं कुलियोंकी तरह मजदूरी न कर सकूंगा और और लिखने-पढ़नेकी नौकरी मिलेगी नहीं, क्योंकि उतना पढ़ा-लिखा था नहीं, परन्तु उसके युवक हृदयमें उत्साह और लगनकी जो तीव्र-धारा बह रही थी, वह इन विघ्न-बाधाओंसे ठण्डी नहीं पड़ी। भाग्य ने भी उसका साथ दिया, बम्बई पहुंचनेके दो-तीन दिन बाद ही किसी मिलमें उसे जगह मिल गयी। इसके बाद वह छ वर्ष तक बम्बई रहा और इस बीचमें वह ऐसी-ऐसी बातें जान गया, जिन्हें और लोग छ जन्ममें भी न जाने पाते। मिल मजदूरोंके लिये रातमें पढ़ने के जो स्कूल थे, उनसे शङ्करने फायदा उठाया। हिंदी, गुजराती और अंग्रेजीकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। 'गिरनी कामगार यूनि-

यन' का सबसे अधिक उत्साही सभ्य रहा। अपने नेताओंका पूर्ण भक्त था। नेताओंके व्याख्यान सुनते-सुनते उसे रोमांच हो आता और दिनमें काम करते समय, रातको सोते समय, स्वप्नमें, वे व्याख्यान उसके दिमागमें घूमते रहते थे। उनका प्रत्येक शब्द शंकर को याद हो गया था। पूंजीवादके अत्याचारने उसके हृदयमें भयङ्कर आघात किया, पर क्या करता, उसके पास शक्ति तो थी ही नहीं। मजदूरोंमें रहते-रहते उसे ऐसा प्रतीत होने लगा था, जैसे मेरे भाई-बन्धु, नाते-रिश्तेद्रार यही लोग हैं। माता-पिताने उसका शरीर बनाया था, पर इन लोगोंके संसर्गमें आनेके बाद उसमें मनुष्यता उत्पन्न हुई थी, अत्याचारके खिलाफ युद्ध करनेकी मनोवृति जाग्रत हुई थी।

इसी बीच एक दिन यूनियनके मन्त्रीने उसे अपने पास बुलाकर कहा—देखो भाई शंकर, हम लोग यह अच्छी तरह अनुभव करते हैं, कि तुम यहां रहकर हमारे बहुतसे काम आ सकते हो, पर तुम किसान के बेटे हो, गाँवोंका पूरा अनुभव है, इस लिये तुम अपने घर चले जाओ और वहां यूनियनके विचारोंका, उसके साहित्यका प्रचार कर वहांके लोगोंको शिक्षित बनाओ। उन्हें ज्ञानका ऐसा आलोक प्रदान करो, जिससे वे देशको और उसके चिर शत्रु पूंजीवादको अच्छी तरह पहचान लें।

शङ्करकी इच्छा तो बम्बई छोड़नेकी न थी, परन्तु कर्तव्यके सामने एक व्यक्तिकी इच्छाका कोई मूल्य नहीं होता, यह बात वह बहुत अच्छी तरह समझ गया था, इस लिये कुछ दिन बाद ही बम्बईसे चलकर अपने गाँवमें पहुंच गया। जिस दिनकी बात इस कहानी

के प्रारम्भमें लिखी गयी है, उस दिन उसे आये छ महीनेसे कुछ दिन अधिक हो चुके थे। पहले-पहले तो शंकर अपने नये और तीव्र विचारोंके कारण, गाँववालोंको कुछ बेढंगा-सा प्रतीत हुआ, पर जबसे दामोदरने उसे धीरे-धीरे अपना काम आगे बढ़ानेकी सलाह दी, तबसे उसने अपने कामका क्रम बदल दिया और लोकप्रिय भी हो गया।

शङ्करके काफी विरोध करनेपर भी दामोदरने अपना मकान बन्धक रख कर स्त्रीकी करनी खूब धूम-धामसे की। परन्तु थोड़े दिन बाद ही महाजन लोगोंने तकाजा आरम्भ कर दिया। दामोदरकी पैर तलेकी खिसक गयी। उसके पास तो कुछ था नहीं, उन्हें रुपया दे कहां से? बेचारा बड़ी मुसीबतमें पड़ा। अन्तमें एक दिन शङ्करकी चिट्ठी लेकर, अपनी तकदीर आजमानेके लिये, बम्बई के लिये चल पड़ा। अपनी छोटी-सी लड़कीको तीन रुपया महीना देनेका करारकर अपने किसी भाईके यहां छोड़ गया।

दामोदर बम्बई पहुंचा, तो शङ्करके पत्रके कारण एक मिलमें नौकरी तो मिल गई, पर शङ्करके मित्रोंका संसर्ग न प्राप्त हो सका। क्योंकि कुछ तो इधर-उधर हो गये और कुछ बम्बईसे बाहर चले गये थे।

(३)

शङ्करको विश्वास था, कि बम्बईमें जैसे मेरा जीवन व्यतीत हुआ था, दामोदरका भी उसी प्रकार बितेगा और वह भी मेरे जैसी आत्म-विश्वासकी शिक्षा ग्रहण करनेमें समर्थ हो सकेगा। पर अठारह

वर्षके जिज्ञासु और चञ्चल हृदयमें और पैंतिस वर्षके दुनियांके थपेड़े खाए हुए हृदयमें जो फर्क होता है, शङ्करको उसका ज्ञान न था। दामोदर तो सिर्फ इस लिये बम्बई गया था, कि कुछ कमा-धमाकर घर आए और महाजनके चंगुलसे अपने रहनेके मकानको छुड़ा ले। इसी लिये दामोदर न दिनको दिन समझता था, न रातको रात। उसे जब काम करनेको दिया जाता, तभी वह पशुकी तरह उसमें जुट जाता। यह बात नहीं है, कि वह मजदूर नेताओंके व्याख्यान सुननेके लिये न जाता हो, परन्तु उनकी बातें दामोदरके दिमागमें प्रवेश न कर पाती थीं। उसे बचपनसे भाग्य और प्रारब्धके भरोसे कष्टों और मुसीबतोंके सहनेकी जो शिक्षा मिली थी, उससे उसका हृदय मजदूर नेताओंके लिये अनुर्वर हो चुका था। हाँ, व्याख्यान सुनते-सुनते इतना अवश्य हो गया था, कि उसके हृदयमें पूंजीवादके प्रति जो अटूट श्रद्धा थी, उसकी दिवारें कुछ-कुछ हिलने लगी थीं, परन्तु उसका अज्ञान और दीन आत्मा वैसा-का-वैसा ही बना हुआ था। उसने तीन वर्षमें तीन हड़तालोंमें भाग लिया, पर वे तीनों ही विफल हुई और भङ्ग हो गयीं, इसलिये मजदूरोंके सङ्गठन और अपने नेताओंकी लच्छेदार बातोंपर विश्वास न होता था। वह सिर्फ यही समझ पाता था, कि संसारमें मनुष्योंके दो दल बने हुए हैं—एक काम करनेवाला और दूसरा करानेवाला और दोनों दलोंके हित परस्पर विरोधी हैं। इस लिये जब वह एक बहुत बड़ी हड़तालमें भाग लेकर तीन वर्ष बाद घर लौटा, तो थके हुए शरीर और थोड़ेसे रुपयेके सिवा उसके पास कोई नई वस्तु न थी।

खून-पसीना बहाकर इकट्ठे किये हुए सौ रुपये अपने महाजनको दे दिये, परन्तु उसे यह पता न था, कि तीन वर्षमें डेढ़ सौ की रकम बढ़ कर सवा दो सौ हो गयी होगी। जब महाजनसे उसे रकमकी संख्या मालूम हुई, तो उसने सोचा, कोई हर्ज नहीं, किसी तरह सौ रुपया इकट्ठा करके इसे और दे दूं, तो मैं अपने घरका मालिक हो जाऊंगा।

इसके बाद वह दो महीने तक अपने गाँवमें रहा। इस बीचमें उसके मिलकी हड़ताल टूट चुकी थी और उसमें जितने मजदूर भरती होने थे, हो चुके थे। दामोदर बम्बई पहुंचा, तो उसकी जगह भर चुकी थी।

(४)

अपनी गांठमें बंधे हुए दस रुपयेकी पूंजीसे, दामोदरने दो महीनोंमें बम्बईकी गली-गली छान डाली, परन्तु १९२९ का वह साल बड़ा भयानक था। दामोदरको नौकर रखने योग्य सेठ लोग स्वयं नौकरी की तलाशमें मारे-मारे फिर रहे थे। ऐसी दशामें दामोदरको कोई काम मिलना असम्भव हो उठा। इस अवस्थामें उसे अपनी तो उतनी चिन्ता नहीं थी, पर अपनी, छोटी-सी लड़की और महाजनके चंगुलमें फँसे हुए मकानकी चीन्ता रह-रहकर उसका खून सुखाया करती थी।

इसी तरह बहुत दिन भटकनेके बाद एक साथीकी कृपासे किसी सेठके यहां नौकरी मिल गयी, परन्तु सेठजीकी सेठानीने उसे जरा भी

पसन्द न किया, इसलिये कुछ दिन बाद दामोदर फिर सड़क पर मारा-मारा फिरने वाला हो गया। इन दिनों वह प्रतिदिन रातके वक्त खेतबाड़ीके नाके पर हनुमानजीके मंदिरमें होनेवाली कथामें जाया करता और वहां भगवानके प्रेममें दिनभरके परिश्रमको शरीरसे पोंछ डालनेका प्रयत्न करता। धीरे-धीरे लोगोंसे उसका मेल-जोल बढ़ा। कईने उसे फुटकर मजदूरी कर जीवन निर्वाह करनेकी सलाह दी। बेकार रहनेकी अपेक्षा मजदूरी करना कहीं अच्छा है, यह सोचकर वह उसी तरहकी मजदूरी करने लगा। प्रतिदिन चार आनेसे दस-बारह आने तक उसे मिल जाते थे। रातके वक्त दामोदर गिरगांव बेक-रोडके राम मंदिरके बाहर कथा सुनता और देवताओंके वैभवशाली जीवनकी कथाओंके चित्रोंको देखकर प्रसन्न होता। सोनेके लिये उसके पास कोई खास जगह न थी। बाजार बन्द होजाने पर, किसी दूकानके पटरे या किसी मकानके बरामदेमें अपने टोकरेका तकिया लगा कर सो जाता। इस बीच उसका शरीर धीरे-धीरे कमजोर होता चला जा रहा था। आवारगी बढ़ रही थी, परन्तु काम मिलना कम होता जा रहा था। कभी-कभी तो उसे चार-पांच आने पैसेमें ही पूरा दिन काटना पड़ता था। उसकी समझमें यह बात धीरे-धीरे आती चली जा रही थी, कि भगवान् मुझ पर रुष्ठ होते जा रहे हैं।

उन्हीं दिनों अचानक बम्बईमें साम्प्रदायिक दंगा हो गया। सड़कों पर सोनेवालोंकी जान आफतमें फँस गयी। ऐसे भयानक दिनोंमें उन बेचारोंका कहीं ठिकाना न था, कोई वाली-

वारिश न था। 'संकट निवारिणी' समितियों के स्थान धनी प्रतिष्ठित लोगोंसे भर गये थे। दामोदर जैसे समाजके कूड़े-कचरेके लिये वहां रत्ती भर स्थान न था। एक दिन रात्रिके समय दो-तीन बजेके करीब दामोदर एक दूकानके पटरेपर पड़ा था, मीठी-मीठी नींद आ रही थी। इसी समय एक आदमीने आकर उसके ऊपर छुरेका वार किया। दामोदर चिल्ला उठा। आसपासके मकानोंमें रहनेवाले सभ्य शिक्षित और सेठ लोगोंने एक मजदूरकी चिल्लाहट सुनकर हल्ला मचाना शुरू किया। खूनी किसी गलीमें अदृश्य हो गया। जब दामोदरके पास आये, तो उसके कंधेसे खून की धार निकल रही थी। जख्म कारी नहीं था। उसी मुहल्लेके एक डाक्टरने पट्टी बांधी। इसके बाद दो दिनतक दामोदर उसी मुहल्लेके अपरिचित लोगोंका मेहमान बना रहा। जब कुछ अच्छा हुआ, तो अपने लिये सुरक्षित स्थान ढूंढ़ने प्रिन्सेप स्ट्रीटकी ओर चल पड़ा।

(५)

दङ्गा समाप्त हो गया था, पर झल्लीवालोंका काम अभीतक ढीला था। प्रति दिन चार आना पैदा करना भी दामोदरके लिये मुश्किल हो रहा था। पेटकी, लड़कीकी और साहूकारके कर्जेमें फंसे हुए मकानकी चिन्ता दिन-पर-दिन बढ़ती चली जा रही थी। इस समय दामोदरकी मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र हो रही थी। पिछले वर्षकी घटनाओंने देवताओंकी सर्वव्यापकता और दयामयता पर भयानक आक्रमण आरम्भ कर दिया था। दामोदरका मन, घड़ीके पेंडु-

लमकी तरह, क्षण-क्षणमें बदलता रहता था। कभी कभी वह सोचता, पूर्व जन्मके कारण तो आज मेरी यह दशा हो रही है, अब यदि मैंने भगवानपर अविश्वास किया, तो न जाने क्या होगा ? परन्तु दो दिन पहले ही दामोदर एक बूढ़े मराठाको, बेकारीसे तंग आकर ट्रामके नीचे आत्महत्या करते देख चुका था। वह आदमी देखनेमें सभ्य और सुसंस्कृत प्रतीत होता था। भलमनसात उसके कुचले हुए चेहरेसे टपकी पड़ रही थी, फिर ऐसा क्यों हुआ ? प्रिन्सेप स्ट्रीट की दूकानोंके पटरोंपर सोने वाले किसी साथीने एक दिन दामोदरसे कहा कि आज एक मुसलमानने बेकारीसे तङ्ग आकर भूखकी ज्वाला न सह सकनेके कारण अपनी स्त्री और बच्चोंका खूनकर आत्म-हत्या कर ली है। भगवान् दयामय हैं तो यह सब क्यों होता है ? क्या आजकल भगवान् अपनी सृष्टिसे लापरवाह होते चले जा रहे हैं ?

दामोदरका एक मुसलमान दोस्त था; शुद्ध गुण्डागिरीसे अपना पेट भरता था। वह अक्सर उससे कहा करता था,—'दोस्त भोजन चाहे कैसे बुरे तरीकेसे संग्रह किया जाय, परन्तु भगवान् जरा भी नाराज नहीं होते।' यह सुनकर दामोदरके मनमें अपने उस दोस्तके प्रति घृणा उत्पन्न होती थी, परन्तु साथ ही साथ मजदूर नेताओंके व्याख्यानोंमें सुनी हुई बातें भी याद आ जाती थीं, जिससे उसका हृदय विचलित हो उठता था। शङ्करकी नास्तिकता उसमें सहारा पहुंचाती थी। दामोदर बार-बार यही सोचा करता, इनमें सच्चा कौन है ? इस प्रकार विभिन्न प्रकारकी चिन्ताओंसे ग्रस्त दामोदरको धीरे-धीरे क्षय रोगने धर दबाया।

श्रावणका महीना था। दो महीने निरन्तर बारिशमें भीगनेके कारण उसकी बीमारी काफी बढ़ चुकी थी। चौबीसों घण्टे ज्वर रहता था। प्रथम तो काम ही न मिलता और मिलता भी तो उसे करने की दामोदरमें शक्ति न थी। ऐसे समय उसकी सहायता वह गुण्डा मुसलमान दोस्त ही करता था। कहींसे और किसी तरह भी हो, वह दामोदरको प्रतिदिन पेट भरने लायक पैसे दे जाता था।

उस दिन दामोदर बड़ी मुश्किलसे लाठीके सहारे खड़ा हुआ। उसके पाँव उसे अचानक मेरीन लाइनके रेलवे स्टेशनकी ओर ले चले। वह सोचने लगा—ऐसे दुःखमय जीवनकी अपेक्षा मर जाना क्या अच्छा नहीं है? उस वृद्ध मराठेकी तरह क्या मैं नहीं मर सकता?

दामोदर लाठी टेकता हुआ स्टेशन पर पहुंचा। देखा, वहां तो आने-जानेवाले लोगोंकी भीड़ लग रही है। इसके बाद वह समुद्र किनारे पहुंचा। इस समय शाम हो रही थी, सामाजिक असमानता के अन्यायको देखकर क्रोधसे रक्तवर्ण मुखवाला सूर्य समुद्रमें डूबनेकी तैयारी कर रहा था।

मृत्यु! मृत्यु! दामोदरके मनमें बार-बार यह शब्द गूंजने लगा। इसी समय उसे चार वर्ष पहलेका श्मशानका दृश्य याद आया, अपनी स्त्री और छोटी-सी बालिकाका स्मरण हो आया। उसका हृदय बैठने लगा। वह वहीं बैठ गया। थोड़ी देर बाद कुछ स्वस्थ हुआ। समुद्रकी नमीदार ठण्डी हवा उसके ज्वरग्रस्त शरीरको बड़ी सुहावनी प्रतीत हुई।

दामोदर समुद्रके किनारे कब तक बैठा रहा, पता नहीं। फिर

उठकर स्टेशनकी ओर चला। परन्तु लाईनके पास पहुंचते ही उसका विचार बदल गया। उसने सोचा, आत्मघात करना उचित नहीं है। मैं मर गया तो नन्हीं-सी कलीका क्या होगा? मैं क्यों मरूं?

अन्तिम शब्द उसने ऐसे ढङ्ग से कहे, मानों वह अपने चारों ओर मुंह बाए खड़ी मौतसे अपना पिंड छुड़ाना चाहता हो। दामोदर कुछ वेगसे झपटता हुआ वहांसे चल पड़ा।

कुछ देर बाद वह अपने उसी स्थानपर खड़ा था, जहां रातके वक्त सोता था। यहां तक पहुंचते-पहुंचते बारिश आ गयी थी, दामोदरके फटे हुए कपड़े पानीसे तर हो चुके थे। दामोदरकी पतली-सी जीवन-डोरीमें एक और झटका लग गया था। जब वह नीचे बैठा, तो उसके मुंहसे थूकके साथ खून आने लगा और यह सिलसिला धीरे-धीरे बढ़ता ही रहा। शरीर काँपने लगा। रातके दस बजे तक इसी तरह पड़ा रहा। उसका सांस तेजीके साथ चल रहा था, शरीरमें एेंठन-सी पैदा हो रही थी। आखिर दस बजे बाद दो आदमियोंकी दृष्टि उसके ऊपर पड़ी। दामोदरसे कुछ ही दूर एक मोटर खड़ी थी। उसमेंसे एक दुबला-पतला पारसी एक मोटी पारसनके साथ नीचे उतरा। पारसनने नीचे उतरते ही कहा—देखो, वह एक आदमी पड़ा है, उसे तुमने देखा है न? यह दिन भर इसी फुटपाथपर पड़ा रहता है, बीमार मालूम होता है। ये लोग महल्लोंको रोगोंके कीटाणुओं-से भरे देते हैं। क्या कारपोरेशनका यह कर्तव्य नहीं है, कि इन लोगोंको शहरसे दूर हटाए? तुम लोग कारपोरेशनमें दिन भर क्या भाड़ झोंकते रहते हो, जो शहरके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान नहीं देते?

अपनी प्रेमिकासे लताड़ खाकर पारसी सज्जन दामोदरके पास जाकर बोले—अरे बुड्ढे, यहां पड़ा तू बीमारी क्यों फैला रहा है ? उठ, यहांसे रफ्फूचक्कर हो।

दामोदरने उठनेका प्रयत्न किया, पर चूंकि उसके प्राण ही आकाशमें उड़नेकी तैयारी कर रहे थे, इसलिये उसके शरीरने रत्तीभर काम न दिया।

इसी समय पारसनने कहा—खैर, इस समय रहने दो, बेचारा इतनी रातको कहां जायगा।

पारसी साहब लौटते हुए बोले—साले ये लोग बड़े बदमाश होते हैं जी !

—खैर होने दो।

यह कहकर पारसन अपने साथीका हाथ पकड़कर पासकी गलीमें घुस गयी।

* * * *

साढ़े दस बजनेको आए, परन्तु आज वह मुसलमान भी तो दिखाई नहीं दिया। दामोदरकी हालत उत्तरोत्तर खराब होती चली जार ही थी।

जिस मकानके नीचे दामोदर पड़ा था, उसकी तीसरी मँजिलसे हारमोनियमकी ध्वनि आ रही थी और उसके साथ ही किसी पण्डित के गलेका स्वर भी दामोदरके कानोंमें पहुंच रहा था –'न हि कल्याण कृत कश्चित दुर्गति तात गच्छति।'

संस्कृतके व्याकरणकी हत्या करनेवाले ये शब्द, दामोदरके कानमें

पहुंचे। सट्टा बाजार, लिबर्टीबार और फरास रोड़में जिन लोगोंकी रात गुजरती हैं, उनमेंसे एक सद्गृहस्थकी स्त्री, अपनी अध्यात्मिक, शारीरिक उन्नतिके लिये और पड़ोसियों पर प्रभाव डालनेके उद्देश्यसे, किसी भटकते हुए मूर्ख पण्डितसे श्रावण शुक्ल एकादशीको भगवान्‌की कथा और माहात्म्य सुन रही थी।

पण्डितजीने कहना शुरू किया—जो लोग दूसरोंका कल्याण करते हैं, धर्ममें आस्था रखनेवाले हैं, कठिन कलिकालमें भी आप लोगोंकी तरह पुण्य कार्य करते हैं, ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं और ऐसे ही अन्य कार्योंमें अपना धन लगाते हैं, उनके लिये द्वारका-धीश, गोपीजन वल्लभ भगवान् अपने श्रीमुखसे कहते हैं, कि कल्याण-मार्ग पर चलने वाले महापुरुष दुर्गतिको प्राप्त नहीं होते। इसलिये गीतामें कहा है—न हि कल्याण........

यह सुनकर श्रोतावर्गके नारी विभागमें बैठी हुई सेठानियोंने एक दूसरीकी ओर अर्थसूचक दृष्टिसे देखकर कथावाचकजीकी विद्वत्ताकी प्रशंसा करनी आरम्भ की।

नीचे पड़ा हुआ दामोदर भी इन शब्दोंको सुन रहा था। उसके मनमें भगवान्‌के प्रति रोष हुआ। उसने उन्हें उद्देश्य करके कहा—आखिर तुम भी झूठ बोलनेवाले ही निकले? मैंने अपने जीवनमें किसकी बुराई की है, जो मेरी यह दुर्गति हो रही है? आह, मेरे मरने पर बेचारी दस वर्षकी जरासी लड़कीकी कौन खबर लेगा? कौन उसका ब्याह करेगा। ईश्वर तूने मुझे बहुत ठगा है। शङ्कर

कैसा समझदार है ! नहीं भगवन्, तुम और यह कथा कहने वाला दोनों झूठे हैं !

इस समय दामोदरके त्रिदोष भड़क उठे थे। बात, पित्त और कफ तीनों दोष कुपित होकर उसके शरीरको नष्ट करनेके लिये जोर मारने लगे। दामोदर थोड़ी देर चुप पड़ा रहा, फिर वह आप ही आप बड़बड़ाने लगा—'नहीं, इस अन्तिम समयमें मुझे भगवान्‌पर अविश्वास न करना चाहिये, पर भगवान्, तुम बड़े निष्ठुर हो।' दामोदर फिर अचेत हो गया।

'अरे क्या हो गया ?' कहता हुआ सामनेसे अब्दुल अजीज आ पहुंचा। दामोदरके सिरपर हाथ फेरता हुआ बोला,—अरे यार, आज तुझे क्या हो गया है ? मैं तो तेरे लिये देख तो सही दस रुपये लाया हूं। और अपने देश जाकर अपनी बेटीसे मिल और वहीं रह। बम्बईकी आबोहवा बहुत खराब है। देशमें पहुंचते ही तेरी तबीयत ठीक हो जायगी।

यह कहकर अब्दुल अजीजने अपनी टेंटसे कागजमें लपेटे हुए रुपये निकाले। इसी समय दामोदरको खांसी आई और मुंहसे खून के लोथड़े गिरने लगे। शरीर पीला पड़ गया। अब्दुलने फिर उसे लिटा दिया और रुपये जेबमें डालकर न जाने क्या सोचने लगा। थोड़ी देर बाद आप ही आप बोला, आज मामला बेढब नजर आता है। हे अल्लाह, आज सितार मियां भी गुजर गये, अब इसका भी न जाने क्या होनेवाला है ?

अब्दुल अभी-अभी चरस पीकर आया था, काफी जोरोंका नशा चढ़ा हुआ था। अचानक उसे ध्यान आया, कि दामोदरको चरस पिलाना चाहिये। ठण्ढ काफी है, सांस जोरसे चल रहा है, चरससे ठीक हो जायगा। कल सुबह तक जीता रहा, तो इसे भेज दूंगा।

अब्दुल दौड़ा हुआ चरसकी दुकान पर पहुंचा। चरस लिया, चिलम खरीदी। वापस दामोदरके पास पहुंचा तो, वह कुछ बड़बड़ा रहा था। अब्दुलने चरसकी चिलम तैयार करके कहा—ले दोस्त, इसमें दम लगा ले।

दामोदरने सिर हिला दिया, कि वह इसे नहीं पीना चाहता। अब्दुलने फिर कहा—अरे यह तो दवा है पी न ले।

दामोदरके इच्छा न रहने पर भी अब्दुलके कहनेसे एक हल्का-सा दम खींच लिया, फौरन् असर पहुंचा। एक दम और खींचा। इसके बाद लुढ़कता हुआ अब्दुलकी गोदमें पड़ गया और तीन-चार मिनट बाद ही उठकर बैठ गया। अब्दुलने कहा—हां यह बात है! देखना सौ दवाकी एक दवा चरस है। बस, अब तुम्हारा सारा रोग भाग जायगा।

अब्दुलको नशा तो चढ़ा ही हुआ था, उसने बकना शुरू किया। बोला देख, जरा होशियारीसे रहना, कुछ देर बाद एक दम और लगा लेना, बस सुबह हुई रक्खी है और सुबह होते ही तुम्हें गाड़ीपर बैठा दूंगा।

अब्दुल बोलता जा रहा था और दामोदर उसकी ओर घृणा, करुणा और कृतज्ञता मिश्रित भावसे देख रहा था। थोड़ी देर बाद उसने पूछा यह सब कुछ ठीक है, परन्तु यह बतलाओ, कि तुम ये रुपये कहांसे लाए हो ?

—अरे, इन बातोंको रहने दे, मैं-मैं जहांसे रुपये लाया हूं, उस स्थानका पता पुलिसके बापको भी नहीं चल सकता।

—लेकिन तू इन्हें लाया क्यों ?

—सच-सच बतला दूं ?

—हां।

अब्दुलने गम्भीर होकर कहा—तेरे इस हाथ पर छुरे का वार किसने किया था, तुझे मालूम है ?

—नहीं।

—मैंने ही किया था।

दामोदरने आश्चर्यचकित होकर कहा—ऐं, यह बात है ?

—हां, इसी लिये तो मैं तुम्हारे लिये इतनी तकलीफ़ उठाता हूं, नहीं तो मैं किसीके बाप का नौकर थोड़े ही हूं।

—भला तुमने मुझे मारा क्यों था ?

—झख मारनेके लिये। मैं नशेबाज आदमी ठहरा, इस लिये सब लोग बेवक़ूफ़ बना लेते हैं।

—कौन बेवक़ूफ़ बना लेते हैं ?

यही सब मौलवी-मुल्ला और बड़े आदमी। कहते थे, हिन्दुओं-को मारनेसे सबाब हासिल होता है !

दामोदर का ध्यान अचानक दूसरी ओर चला गया। पंडितजी महाराज कह रहे थे—न हि कल्याण............

दामोदर चौंककर खड़ा होगया। अब्दुल ने घबड़ाकर उसे बैठानेका प्रयत्न करते हुए पूछा—क्या बात है दोस्त ?

दामोदरका सांस धीरे-धीरे हलका पड़ रहा था, बोलना भी मुश्किल था, पर उसकी दृष्टि मकानकी तीसरी मंजिलकी ओर लगी हुई थी, यह देखकर अब्दुलने ऊपरकी ओर देखकर कहा—किसी हिन्दूके यहां कथा होरही है।

अब्दुलने इसके बाद दामोदरको पकड़कर बैठा दिया। दामोदरने उत्तेजित भावसे कहा—झूठ बोल रहा है।

अब्दुलने कहा—ठीक है, तुम्हारे यह पण्डित और हमारे मुल्ला लोग सब झूठ बोलते हैं, लोगों को बेवकूफ़ बनाते हैं। भाईसे भाईको मरवा डालते हैं। इसी लिये तो मैंने तुम्हें छुरा मारा था, नहीं तो तुमने मेरा क्या बिगाड़ा था ? ये सब गप्प हांकते हैं—

अब्दुलका व्याख्यान जारी था, कि दामोदर अशक्त भावसे पड़ रहा। इसी समय अब्दुलको ख़याल हुआ, कि दामोदरने तीन दिनसे कुछ खाया नहीं है, यदि इसे चरसके नशेपर कुछ खानेको मिले तो बड़ा अच्छा हो। यह सोचकर बोला—कुछ खाना चाहते हो ? संकोच नहीं करना, मेरे पास काफी पैसे हैं।

दामोदरने सिर हिला दिया। अब्दुलने फिर पूछा—कुछ पानी पीना चाहते हो ?

दामोदरने कुछ उत्तर नहीं दिया। अब्दुलने फिर कहा—बस थोड़ासा दूध पीलो, तुम्हारी तबीयत अभी ठीक हो जायगी।

अब्दुल दामोदरको सान्त्वना देता हुआ फिर बोला—घबराओ मत, मैं अभी सामनेकी दुकानसे दूध लिये आता हूं।

अब्दुल दूध लेने चला गया। दामोदरकी अपार्थिव तेजसे भरी आंखें अब्दुलकी ओर देखने लगीं। इसी समय मंजीरे और हारमोनियमके साथ पंडितजीका स्वर सुन पड़ा—न हि-कल्याणकृत् कश्चित............

दामोदर उठकर खड़ा होगया। उसमें इस समय एक प्रकारका अस्वाभाविक बल आगया था। बोला—सब बदमाश हैं, ईश्वर भी और पंडित भी।

यह कहते हुए वह जीनेपर धड़धड़ाता हुआ चढ़ गया, पर उसमें जो आस्वभाविक बल आगया था, वह अचानक समाप्त हो-जानेसे बीचमें ही लड़खड़ाकर गिर पड़ा।

ऊपरसे आवाज आई—कौन है; कौन है? इसी समय किसीने नीचेसे कहा—चोर! बदमाश!! मवाली!!!

चोर और मवालीका नाम सुनते ही आसपासके मकानोंके दरवाजे बन्द होने लगे। चारों ओर आतंकसा छा गया। थोड़ी देर बाद ऊपर वाले मकानके नौकर लोग जीकड़ा करके दामोदरके पास आए।

दामोदरका शरीर चेतनाहीन अवस्थामें पड़ा हुआ था। नौकरोंने चिल्लाना शुरू किया—मवाली है! शराबी है!!

एक आदमीने पास आकर दामोदरको आवाज दी। जब कुछ जवाब न मिला, तो पांच-सात लात लगा दी। पर इस समय दामोदरकी वह अवस्था न थी, जो वह जवाब दे सकता।

—बदमाश मर गया मालूम होता है, पर इसे अचानक हो क्या गया ?

जब लोगोंको मालूम हुआ, कि यह मर चुका है, तो अपनी रक्षा के लिये मुंह फेरने लगे। कोई इधर खिसका और कोई उधर। परन्तु पहले वहांसे हटते, तो नये आदमी उनका स्थान ग्रहण कर लेते थे।

इसी समय दामोदरको ढूंढ़ता हुआ अब्दुल ऊपर पहुंचा। दूधसे भरा हुआ मट्टीका सकोरा उसके हाथमें था। उसके पीछे-पीछे सैकड़ों तमाशबीन थे।

दामोदरको सीढ़ीमें गिरा हुआ देखकर अब्दुल उसके पास बैठ गया। उसको हिला डुलाकर देखा, नाकके सामने हाथ रखकर सांस देखा, छातीकी धड़कन देखी, इसके बाद उठकर खड़ा हो गया और ध्यानसे दामोरकी ओर देखने लगा।

—बस, सब खलास हो गया! अरे, अपने मौलवीके पास जाना चाहता था ? अब तो तुझे जन्नत मिल गयी न ?

अब्दुलको कुछ तो नशा चढ़ा ही हुआ था और कुछ दामोदरकी मौतसे उत्तेजित हो उठा था। वह दामोदरकी लाशपर दूध छोड़ता हुआ बोला—ले, यह हम लोगोंकी दोस्तीकी आखिरी भेंट है। इसे अपने खुदाके यहां मेरे नामसे जमा कर देना और उससे कहना कि कया-

मतके दिन, जिस समय मेरी आंख खुले तो दूधका यह प्याला तैयार मिले !

इस समय उसके आस-पास बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। वह पागलोंकी तरह हंसता हुआ, वहांसे चलनेको घूमा, तो देखा पुलिस इन्स्पेक्टर खड़ा हुआ है।

इन्सपेक्टरने कहा—क्योंजी, तुमने यह क्या गड़बड़ मचा रक्खी है ?

अब्दुलने फौरन् जवाब दिया—मै सच कहता हूं, अगर यह ऊपर पहुंचकर हिन्दुओंकी कथा सुन सकता तो, अभी न मरता।

—चुप रहो। इन्स्पेक्टरने चिल्लाकर कहा।

इसके बाद तहकीकात की गयी, वहांसे मुर्देको हटानेका प्रबन्ध किया गया। दामोदरने जीवित रहते हुए सैकड़ों हजारों मोटरें देखी थीं, पर उनपर सवार होनेका सौभाग्य उसे प्राप्त न हो सका था। आज वह अनन्त मार्गकी यात्रा को चल पड़ा था, तो उसकी लाश मोटरपर रखकर श्मशान घाट पहुंचाई गयी !

तीसरी मंजिलसे इस समय भी कथावाचकजीकी आवाज आ रही थी—'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।'

जीवन

(१)

उस झोपड़ीमें कुल ढाई प्राणी रहते थे—सुरजन, मोती और उनका दो सालका नन्हा-सा बच्चा मुन्ना। सुरजनकी उम्र पच्चीस सालके आस-पास थी और उसकी स्त्री मोतीकी बीस के। विधाताके शाप, मनुष्योंके अत्याचार और महाजनोंकी मेहरबानीसे, उनके सुखके दिन, उनसे इस तरह दूर चले गये थे, जैसे अभागे भारतीयोंसे स्वतन्त्रता।

असौजका महीना था। कई दिनसे पानी बरस रहा था। सुरजनकी झोंपड़ीमें निरन्तर पानी चूनेसे खासा कीचड़ हो रहा था। सुरजन एक टूटी-सी चारपाईपर पड़ा था। उसके युवक हृदयमें निराशाकी आन्धी चल रही थी और चिन्ता तथा भूखकी ज्वालाकी लपटें उठ रही थीं।

सुरजनके दिन सदासे ऐसे ही नहीं थे, उसके पास भी पुख्ता दस विघे जमीन थी, बैलोंकी जोड़ी थी, दूध देनेवाली एक भैंस और चार-पांच गाय थीं। माता-पिता थे, इकलौता सुरजन उनकी आखों का तारा था। डण्ड पेलना, कसरत करना, पेटभर दूध पीना और थोड़ा-वहुत घरका काम कर देना, यही उसकी दिनचर्या थी। बिरादरीमें मान था, गांवमें इज्जत थी। लोग कहा करते थे कि भगवान् का दिया उसके पास सब कुछ है।

परन्तु जिस दिनसे मोती ब्याह कर लाई गयी, उसी दिनसे घरमें विपत्तियोंने अपना डेरा जमा लिया। सबसे पहले—ब्याहकी धूम-धाम खत्म होते न होते ही—उनकी दूध देनेवाली, भैंस सांपके काटनेसे मर गयी। भैंस रुपये बारह आने रोजका दूध देती थी। दूधकी बिक्रीके रुपये इकट्ठे करके, उन्हींसे सुरजनका विवाह किया गया था। भैंसका मरना भविष्यमें आनेवाली विपत्तियोंकी सूचना थी, परन्तु सुरजनके पिताने इसकी जरा परवा न की। उसने सोचा, कोई बात नहीं, ऐसा तो हो ही जाता है। औरतें नाहक ही बहू को बदनाम करती हैं, वह तो साक्षात लक्ष्मीका स्वरूप है। ऐसी सुन्दर बहू गाँव भरमें मला है भी किसीके यहां? औरतें बहूकी सुन्दरता देखकर दिलमें जलती हैं, इसीसे उसकी बुराई करती हैं। महीने-दो-महीने बाद दूसरी भैंस ले ली जायगी। इसके लिये न होगा लल्लाकी अम्मांके कड़े बेच दिये जायंगे।

परन्तु मनचाही तो बड़े-बड़ोंकी भी नहीं होती, फिर बेचारा सुरजनका पिता किस गिनतीमें था। वह सुरजनके ब्याहसे दो महीने और कुछ दिन बाद, भैंस खरींदनेकी इच्छा मनमें लिये, प्लेगकी भेंट हो गया। इससे दो-चार दिन बाद सुरजनकी मां भी उसी रास्ते, उस लोकमें चली गयी, जहांसे अपने बहू-बेटेके सुख-दुःख और भलेबुरेको देखने नहीं आया जा सकता। मां-बापके इस तरह अचानक उठ जानेसे सुरजनके सिरपर वज्रपात हो गया। उसे अपने घर-द्वारका कुछ पता न था। जिम्मेदारी उठाना उसने सीखा न था। खैर, किसी तरह मां-बापके श्राद्धसे निबटकर अपना

काम सम्हालने लगा। सोचा, एक न एक दिन तो यह होना ही था, दो दिन पहले ही सही। अब मुझे लगनसे घरका काम-काज करना चाहिये। परन्तु भवितव्यता उसके इस निश्चयपर व्यंगकी हंसी हंस रही थी। उसी साल पशुओंमें कोई ऐसा रोग चला, कि सुरजन के दोनों बैल और कुल गाएं मर गयीं। गायों और बैलोंसे घर खाली होनेपर उसको अपने पड़ौसियोंकी बातोंमें कुछ सचाई नजर आने लगी। उसने कहानियोंमें सुना था, कि डायनें अत्यन्त खूब-सूरत स्त्रियोंका रूप धारण कर लोगोंके घरमें जाती हैं और धीरे-धीरे उस घरको चौपट कर डालती हैं। मोती कहीं ऐसी ही कोई डायन तो नहीं है? जबसे उसके हृदयमें ये भाव उठे, तब से वह मोतीकी आंख बचाकर उसकी ओर बड़ी गहरी दृष्टिसे देखा करता था। शायद किसी प्रकार इसके डायन होनेका प्रमाण मिल जाय। परन्तु बहुत दिन इस तरह बीत जानेपर भी मोतीके डायन होनेकी कोई बात दिखलाई न दी। बल्कि वह देखता था, कि इस विपत्तिके समय भी वह प्रसन्न रहती है और जहांतक होता है, स्वयं कष्ट उठाकर मुझे सुख पहुंचानेका प्रयत्न करती है। परन्तु पड़ौसियोंकी बातें उसके हृदयमें काफी मज़बूतीसे जम चुकी थीं, इस लिये मोतीके साथ उसके व्यवहारमें भी थोड़ा बहुत अन्तर आ गया।

इस तरह सुक्खम-दुक्खम एक साल बीत गया। दूसरे साल मोतीके पेटसे एक चांद-सा बेटा पैदा हुआ। सोचा अब शायद दुःखके दिन बीत गये हैं। परन्तु उसे यह मालूम नहीं था, कि अभी न जाने कैसे-कैसे दुःख उठाने पड़ेंगे।

इसके कुछ महीने बाद ही गांवके नवाबकी दृष्टि मोतीपर पड़ी। पहले डोरे डाले गये, दूतियां भेजी गयीं, गहने-कपड़ेका लालच दिया गया। जब इससे काम न चला, तो नवाब साहबने सुरजनको अपने सिपाहियोंमें भरती कर लिया। बेचारे सुरजनको उसके इरादेका कुछ पता न था। उसने सोचा, मालिककी नौकरी करता रहूंगा और अपनी खेती-बाड़ी भी। लेकिन उसका यह इरादा भी पूरा न हो सका। उसे बीच-बीचमें कई-कई दिनके लिये दूसरे गांव जाना पड़ता था, इससे उसके अपने काममें रुकावट होने लगी। खैर, किसी तरह यह भी निभ रहा था, कि तीन महीने बाद सुरजनको नौकरीसे जवाब हो गया। वह अभी नौकरीके अलग होनेके कारणों पर विचार ही कर रहा था, कि पिछले एक सालका बकाया लगान अदा करनेका समन जिमींदार नवाब साहबकी ओरसे मिला। अपने ऊपर गिरी हुई इस बिना बादलकी बिजलीसे सुरजन किंकर्तव्य-विमूढ़सा हो गया। अपने पिताके सामनेके लेन देनका यद्यपि उसे कुछ पता नहीं था, पर वह इतना जानता था, कि हमें किसीका एक पैसा भी देना नहीं है। पिछले सालका लगान उसने अपने हाथसे दिया था और इस सालका तनख्वाहमें कट गया था। वह रोता-पीटता नवाब साहबके पास पहुंचा, पर उन्होंने सुरजनकी एक भी बात सुननेसे इन्कार कर दिया। घर आकर मोतीसे सारा किस्सा कहा। मोतीने कुछ देर सोचकर कहा--जब मुसीबतके दिन आते हैं, तो भुने तीतर भी उड़ जाते हैं। पर इतना घबरानेकी जरूरत नहीं है। मालूम होता है, हमारी जमीन पर उसकी शनिदृष्टि पड़ी है।

इससे उनका घर भरता है, तो भर लेने दो। जिस भगवान्‌ने हम लोगोंको मुंह और पेट दिया है, वह कभी भूखा नहीं रख सकता। न होगा, मेहनत मज़दूरी करके पेट भर लेंगे।

इस घटनासे दस-पांच दिन बाद ही लाला छज्जूमलका समन मिला। उसने दो सौ रुपये और उनके सूदकी नालिश की थी। मुन्नाके पैदा होनेमें लिये हुए बीस रुपये, इतने थोड़े दिनोंमें दो सौ कैसे हो गये, यह सुरजनके लिये ऐसी कठिन समस्या थी, जैसे सर्वसाधारणके लिये भूकम्पका कारण समझनेकी होती है।

इसके कुछ दिन बाद खेत नीलाम पर चढ़े, उन्हें नवाब साहबने खरीद लिया। मकान नीलाम हुआ, तो उसे महाजनने खरीद लिया। मोतीके गहने-पत्ते वकीलों, मुख्यारों और अदालतके चपरासियोंकी भेंट हो गये।

जिस मकानमें सुरजन पैदा हुआ था, जिसमें रहकर बचपनमें अनेक खेल खेले थे, जिसका चप्पा-चप्पा उसके जीवनकी मधुर-स्मृतियोंसे भरा हुआ था, उस घरको छोड़ते हुए सुरजनका हृदय फटा जा रहा था। मोती न होती, तो सुरजन आत्महत्या कर लेता अथवा नवाब और लाला छज्जूमलको क़त्ल कर फांसी पा जाता। इसी मुसीबतके समय मोती उसके लिये, माता-पिता और भगवान्‌से भी अधिक सहायक सिद्ध हुई। उसके मनपर कभी मैल न नहीं आया। उसने कभी आंसू नहीं बहाये। जिस दिन दोनों स्त्री-पुरुष अपने बचे हुए थोड़ेसे सामानकी गठरी सिरपर रखकर उस गांवसे चलने लगे, तब भी मोतीके चेहरेपर विषादकी रेखाका पता न था। इक्कीस

कोस चलकर दूसरे गांवमें आए। वहांके जिमींदारने सुरजनकी विपत्ति-पर तरस खाकर खाली पड़ा हुआ, जमीनका छोटा-सा टुकड़ा उसे दे दिया। मोती और सुरजनके परिश्रमसे फूसका झोपड़ा बना और अपने बच्चेके साथ दोनों उसमें रहने लगे।

सुरजन चारपाईपर पड़ा-पड़ा अपने पिछले जीवनकी घटनाओंको स्मृति चटपर क्रमशः सजा-सजाकर रख रहा था। पन्द्रह दिनसे उसे मलेरिया बुखारने दबा रक्खा था। अकेले पड़े-पड़े बीती हुई बातोंको याद करनेके सिवा उसके पास काम ही क्या था? काम होता भी तो वह कर सकने योग्य न था। उसकी विचार-धारा फिर आगे बढ़ी। मोती क्या सच-मुच डायन है? उसके आनेके बाद ही सारा घर बरबाद हुआ है। नहीं, वह तो मेरे जीवनकी आशा है। उसीके कारण तो मैं अबतक जीवित रह सका हूं। पर यह भी कोई जीवन है? चारपाईसे उठ नहीं सकता, बदनपर कपड़ा नहीं है, पेटके लिये अन्न नहीं है, हाथमें कौड़ी नहीं है, क्या यह भी जीना है? हां, जीना क्यों नहीं है? भूख-प्यास लगती है, बुखार चढ़ता है, छप्पर चूता है, मच्छर काटते हैं, मक्खी भिन-भिनाती हैं, मोती खाना बनाकर देती है........

(२)

सहसा सुरजनकी विचारधारा भङ्ग हो गयी। सामनेसे मोती मुस्कराती आ रही थी। उसके सिरपर छोटी-सी गठरी थी, आंचलमें भी कुछ बन्धा था और कन्धेसे लगा हुआ मुन्ना सो रहा

था। मोतीने भीतर आकर सिरसे गठरी उतारी और मुन्नाको सुर-जनके पास लिटाती हुई बोली—"कहो, आज तबीयत कैसी है ? कुछ भूख लगी है ? मेरे पीछे कुछ तकलीफ तो नहीं हुई ?"

मोतीके चेहरेपर मुस्कराहट देखकर सुरजनकी आखोंमें आंसू छलछला आए थे। यही तो वह मोती है, जो किसी दिन अपनी सुन्दरताके कारण मुहल्ले भरकी स्त्रियोंमें ईर्ष्या फैलाए रहती थी, जिसकी रूपज्योति और हंसते हुए आननसे सारा घर जगमगा उठता था। मां जिसे कामको न हाथ लगाने देती थी और बापका मुंह लक्ष्मी-लक्ष्मी कहते सूखा जाता था। आज वही मोती मेहनत करते-करते सूखकर कांटा हो गयी है। गाल पिचक गये हैं और उनका गुलाबी रङ्ग हल्दी-सा ज़र्द हो गया है। आंखें गढेमें धँस गयी हैं। लोगोंके जूठे बरतन मांजकर मेरे लिये भोजन जुटाती है! मोती आज सुरजनको देवी-सी प्रतीत हुई। उसने मन ही मन निश्चय किया, कि इस बार बीमारीसे उठते ही, चाहे कैसा ही जलील काम करना पड़े, पर मोतीके सुखी होनेका प्रयत्न करूंगा।

सुरजनकी आंखोंमें आंसू देखकर मोतीने उसके गलेमें बांहें डाल कर और मुंहके पास मुंह ले जाकर कहा—"क्या बात है ? अपना मन इस तरह भारी क्यों कर रहे हो ? मुझे आनेमें देर हो गयी है, इससे क्या तुम्हें तकलीफ हुई है ? क्या करूं, पांडेजीके यहां आज महमान आ गये थे, काम कुछ बढ़ गया था, इसीसे देर हुई है। फिर भी जहांतक मुझसे हो सका, जल्दी ही पूरा करके आई हूं।"

सुरजनने अपने सफेद, सूखे और पपड़ी जमे हुए ओठोंसे मोती का मुंह चूमकर कहा—"नहीं, यह बात नहीं है।"

"तो फिर बात क्या है ?"

"कुछ नहीं।"

"तुम्हारी यही आदत तो मुझे खराब मालूम पड़ती है, कि अपने मनकी बात मुझसे नहीं कहते।"

"कुछ बात हो बतलाऊं।"

"नहीं तुम्हारे मनमें जरूर कुछ बात है, जो तुम मुझे नहीं बतलाना चाहते।"

"क्या कहूं मोती, मुझे अपने निकम्मेपन पर गुस्सा आता है। जबसे तुम इस घरमें आई हो, मैं तुम्हें एक दिन भी सुखसे नहीं रख सका। चाहिये, तो यह था, मैं तुम्हें कमाकर खिलाता, पर तुम्हीं मुझे खिला रही हो ! औरतकी कमाई खाना भी क्या कोई जिन्दगी है ?"

यह सुनकर मोतीका हृदय पतिकी निस्सहायावस्थाको देखकर अत्यन्त द्रवित हो उठा। उसने पूर्ण निर्भयताके साथ कहा—"तुम तो यों ही अपना मन मैला कर रहे हो। जो काम तुम्हारे करनेका है, उसे तुम करते हो और जो मेरे करनेका है, उसे में करती हूं। उसमें अपनेको छोटा समझनेकी क्या बात है ? मैंने तो तुमसे कभी कोई शिकायत नहीं की ?"

"तुम्हारा शिकायत न करना ही तो मुझे ज्यादा दुःख देता है ?"

"अच्छा तो कलसे दिनमें दो-चार बार शिकायत कर दिया करूंगी।"

मोती यह कहकर मुस्करा उठी, सुरजन भी हंस पड़ा। मोती बोली —"अच्छा अब चूल्हा जलाकर पहले तुम्हारे लिये मूंगकी दाल का पानी बना दूं, तब फिर दूसरी बात।"

कुछ दूर पर रहनेवाली पड़ौसिनके घरसे आग लाकर मोतीने चूल्हा जलाया और मिट्टीकी हांडीमें मूंगकी दाल चढ़ा दी। फिर सुरजनके पास आ और उसका दहिना हाथ पकड़ कर कहा—"आज बुखार तो नहीं हुआ ?"

"नहीं।"

"बस अब दो-चार दिनमें ठीक हो जाओगे।"

"ठीक होकर ही क्या कर लूंगा ? अपने पास दूसरोंकी मजदूरी करनेके सिवा खाने-कमानेका और कोई जरिया तो है नहीं।"

"देखो, दुनियांमें किसीके दिन एकसे नहीं रहते, हमारे भी नहीं रहेंगे।"

"भगवान् जाने, आगे चलकर क्या होनेवाला है।"

'आज बुआजी (इस गाँवके जिमीदार पांडेजी की बहन) कह रहीं थी, कि "भैय्यासे कहकर तुम्हें थोड़ी जमीन जोतनेके लिये दिलवा दूंगी। अगले महीनेमें बुआई होगी, भगवान् चाहेगा, तो तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा।' बेचारी बड़ी भली हैं। मुझे अपनी बेटीकी तरह देखती हैं।'

(३)

रातके दस बज चुके थे। मोती अपनी झोंपड़ीमें चटाई पर टाटका टुकड़ा बिछाए पड़ी थी। कई दिनके बाद आसमान साफ हुआ था। झोंपड़ीकी बांसकी बनी जीर्ण-शीर्ण दीवारसे कभी-कभी आकाशमें टिम-टिमाते हुए तारे दिखाई दे जाते थे। गाँवके कुत्तोंकी कर्ण-कटु आवाजसे उसकी नींद दूर भाग रही थी। मच्छरोंका आक्रमण, उसकी गतिमें और भी तेजी पैदा कर रहा था। मोती कभी इस करवट लेटती और कभी उस करवट। अपने मुन्नाको सीलसे बचानेके लिये सुरजनके पास लिटा रक्खा था।

उस दिन मोतीकी तबीयत कुछ अच्छी न थी। एक तो सुबह गांवमें जाते-आते समय बारिशमें भीगी थी, दूसरे उस दिन काम भी अधिक करना पड़ा था। उसके मनमें बेकली-सी हो रही थी और शरीरमें हड़फूटन।

मोती रानीके आसनसे गिरकर बांदीकी भी बांदी हो गयी थी, परन्तु उसने अपनी इस दुरवस्थामें भी कभी हिम्मत न हारी थी। सदा पतिको सान्त्वना देती रहती। परन्तु उस दिन उसका मन कुछ उदास था। जिस पथिकका लक्ष्य निश्चित होता है, वह अपने लक्ष्य-स्थल तक पहुंचनेकी आशामें मार्गकी कठिनाइयोंकी अधिक परवा नहीं करता, पर जिसका लक्ष्य निर्दिष्ट नहीं होता, उसका मार्गकी विपत्तियों के कारण घबड़ा जाना अस्वभाविक नहीं है, और मोतीको तो कठि-नाइयोंके साथ युद्ध करनेकी शिक्षा ही न मिली थी। वह मां-बापके

आदरके पालनेमें पली और बेफिक्रीके झूलेमें झूली थी। उसके पिता गरीब जरूर थे, पर पहली सन्तान होनेके कारण मोतीसे अत्यन्त प्यार करते थे। दो छोटे भाई थे, उनके साथ खेल-कूदमें मोतीका जीवन बेफिक्री और सुखके साथ बीता था। आज इस गन्दी-सी झोंपड़ीमें सीलसे भरी हुई जमीनपर पड़े-पड़े मोती अपनी अतीत जीवन की झांकी देखने लगी। जिस समय उसके नन्हें-नन्हें हाथ पैर थे, तब वह कैसे आनन्दसे फुदकती फिरा करती थी। छोटे भाईको गोदमें ले और बड़ेकी उङ्गली पकड़कर खड़े हुए, मदारीकी बन्दरियाका पतिसे रूठकर बैठे जाना और पतिका उसे मनानेका तमाशा देखना कैसा भला लगता था! उस वक्त न खानेकी चिन्ता थी न नहानेका फिक्र। तेरह-चौदह वर्षकी उम्रमें सुरजनके साथ उसकी सगाई हो गयी थी। ऐसे खाते-पीते और भरे-पूरे घरमें सगाई होनेपर उसकी सहेलियोंने कितनी बधाइयां दीं थीं, बुजुर्गोंने उसके भाग्यको कितना सराहा था। सबकी बातें सुनकर उसके अबोध हृदयमें यह विश्वास जम गया था, कि विवाहके बाद पृथ्वीकी सारी सम्पदा मेरे चरणोंमें लोटने लगेगी। पर आज ? आज इस वास्तविक जीवनमें, जब वह सीली जमीन और खुरदरे बोरिए पर पड़ी करवटें बदल रही थी, तब सहेलियोंकी बधाइयां और बुजुर्गोंके आशीर्वादका क्या मूल्य रह गया था ?

मोतीका विचार थोड़ा एक डग और बढ़ गया। विवाहके बाद ससुराल आते समय, उसके हृदयमें अपने भविष्य जीवनकी कैसी-कैसी सुखद कल्पनाएं भरी हुई थीं। पतिके साथ जब उसने ससुर-

गृहमें प्रवेश किया था, तो ऐसा प्रतीत हुआ था, मानों वह उस नन्दन-काननमें प्रवेश कर रही है, जहां सदा बसन्ती हिलोरें चलते रहते हैं और जहां दुःख-दैन्यकी छायाका भी प्रवेश नहीं होता। परन्तु ससुराल पहुंचानेके तीन दिन बाद ही उसके सारे सुख-स्वप्न भङ्ग हो गये। अचानक भैंसके मर जानेपर वह डाइन कहाई जाने लगी। यद्यपि सास-ससुरने उसके उस कलङ्कको स्वीकार नहीं किया था, पर मह्ले-टोलेकी औरतोंका मुंह कौन पकड़ता ? और जब तीन महीने बाद सास-ससुर भी अपनी लक्ष्मीको छोड़कर विदा हो गये, तो उसको यह अरुचिकर नाम सुननेका अभ्यास और भी अधिक करना पड़ा। उधर पतिदेवकी दृष्टिमें भी कुछ जिज्ञासा और कुछ घबराहट दीखने लगी थी। कुएं पर पानी भरने जाती, तो महल्लेकी औरतें उसे सुना-सुनाकर ताने दिया करतीं। कहतीं, 'आदमी क्या जनावरों तकका पैरा देखा जाता है। जबसे आई है, सब चौपट हो गया। ऐसी कुलच्छनीके रूपको लेकर कोई क्या करे ?' निरुपाय मोती सब सुनती और खूनका घूंट पीकर रह जाती थी। यही गनीमत थी, कि पतिने कभी यह ताना नहीं दिया था। और इसके बाद ? इसके बाद तो विपत्तियोंकी वह बाढ़ आई, ऐसे-ऐसे भूकम्प आये, कि जिनसे बचकर जीते रहना मनुष्यके बसकी बात न थी। सलीमपुरके नवाबने उसकी इज्जत खराब करनेके लिये क्या-क्या उपाय नहीं किये ? महीनोंतक तोहफे और दूतियां आती रहीं। बड़े-बड़े प्रलोभन दिये गये। इतनेसे भी काम न चला, सुरजनको नौकर रख लिया। नवाबने सोचा होगा, इस तरह मुझसे दब जायगी। आह,

वह दिन कैसा भयङ्कर था, घनघोर घटा उमड़ रही थी, दिनमें ही रातका समा नजर आता था। फिर रात होने पर तो अंधेरेका कहना ही क्या था? उस दिन सुरजनको दूसरे गाँव भेजकर नवाब मेरी अस्मतका गाहक होकर, रातके वक्त हमारे घर आया था। उस दिन काळू (कुत्ता) न होता, तो न जाने क्या हो जाता। उसकी (नवाबकी) उस असफलताने हम लोगोंपर पहाड़-सा यह दुःख डाला है। इधर इनसे भी इस विषयमें कुछ न कह सकती थी। एक तो पहले ही मेरे डायन होनेका सन्देह था, उसपर यह बात सुनते तो न जाने क्या कर डालते? इस समय लाख दुःख-सही, पर हम एक दूसरेके साथी हैं, नन्हा-सा बच्चा दोनोंके प्यारका केन्द्र है। उसकी तोतली बोली सुनकर, सारे दुःख, सारे कष्ट और सभी विपत्तियां तिनकेके समान प्रतीत होती हैं। यही भगवान्‌की बड़ी कृपा है।

हृदयकी इस अन्तिम और सुखद कल्पनाने हलकी थपकी देकर मोतीको सुला दिया।

(४)

दस वर्ष बादकी बात है।

इस बीचमें सुरजनकी अवस्था जिस तीव्र गतिसे गिरी थी, उससे भी अधिक तेजीसे ऊपर उठ चुकी है। आज उसके पास अपना मकान, दस-बारह गाय-भैंस, दो जोड़ी बैल, दो नौकर और सबसे बड़ी बात यह है, कि मोतीका शरीर जेवरोंसे भरा है।

इस अवस्थाके परिवर्तनका कारण निर्णय करनेके समय पति-

पत्नीमें मतभेद रहा है। यहांके जिमीदार पांडेजीकी कृपाको तो दोनों स्वीकार करते थे, पर आपसमें एक दूसरेके परिश्रमको इसका कारण समझते थे। बात यह है. कि इस समय उन्हें पुराने कष्टोंकी स्मृति भी सुखद प्रतीत होती थी।

उस दिन सुरजनके छोटे लड़केका अन्नप्रासन संस्कार था। यह उत्सव सुरजनने काफी बड़े पैमानेपर किया था। दरवाजेपर सहनाई बज रही थी, घर लोगोंसे भरा हुआ था। संस्कार हो चुका था. अब ब्राह्मण-भोजन की तैयारी थी।

दोपहर हो चुका था, भोजनकी सामग्री तैयार थी। इस समय सामनेसे जगन्नाथ पांडे आते दिखाई दिये। सुरजन तो उनकी प्रतीक्षा में बैठा ही था, वह दौड़कर दरवाजेके पास पहुंचा और बड़े भक्तिभाव से उनके चरण छूकर भीतर लिवा लाया।

पांडेजी भीतर आकर आयोजनका निरीक्षण करते हुए बोले—"भाई सुरजन, तुम्हारा यह उत्सव देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान् तुम्हें सुखी करें, मेरा यही आशीर्वाद है।"

सुरजनने एक बार फिर पांडेजीके चरण छूकर कहा—"भगवान् की कृपा है, तभी तो आपकी सहायता प्राप्त हुई। मैं तो अपने घर-की रत्ती-रत्ती वस्तु आपकी ही दी हुई समझता हूँ। आपकी कृपा न होती, तो अब तक हम लोग कभीके भूखे मर चुके होते।"

पांडेजीने सुरजनकी बात सुन और कुछ गम्भीर होकर कहा—"सुरजन, इस संसारमें कोई किसी पर कृपा नहीं कर सकता, मनुष्य में इतनी सामर्थ्य ही नहीं है। मैंने तो मनुष्यताके नाते, अपनी

जमीन तुम्हें जोतनेको देकर कर्तव्य पालन भर किया है। जो लोग मुसीबतमें फँसकर हिम्मत हार बैठते हैं, उन्हें कभी सुखके दिन देखने को नहीं मिलते। यह तुम्हारी और तुम्हारी स्त्रीकी कष्ट-सहिष्णुता और तपस्या का परिणाम है, कि आज मैं भी तुम्हें सुखी देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ। अच्छा, अब बिलम्ब होरहा है, काम शुरू करो।"

नारी

(१)

देहलीके प्रसिद्ध और पुराने रईस लाला करमचन्दको लोग दिलका दरियाव कहा करते थे। अन्धे, लंगड़े, लूले, अपाहिज लोग कभी उनके पाससे निराश होकर, खिन्न होकर नहीं लौटे। उनके पास जो कोई भी जाता, तृप्त होकर आता था।

उनके घर केवल एक ही सन्तान थी और वह थी उनकी लड़की कमला। सेठजीने पचासों हजार रुपया उस लड़कीके हाथोंसे गरीबों को दान करा दिया था। और सब घरोंमें तो भिक्षुक लोग जाकर 'थोड़ी भिक्षा चाहिये माताजी!' कहा करते थे, पर इस घरमें आकर कहते—कमला मैया कहां है?

सत्य और त्यागकी आबोहवामें पली हुई यही कमला, एक दिन, स्थानभ्रष्ट नक्षत्रकी तरह, एक ऐसे अचिन्तितपूर्व संसारमें जा पहुंची, जहां अपने स्वार्थ साधनके षड़्यन्त्र ही निरन्तर चला करते थे। उस घरका प्रत्येक प्राणी अपने सिवा और किसीको देखता ही न था। अथवा देखता भी था, तो केवल इस लिये, कि इसके द्वारा अपना स्वार्थ कैसे सिद्ध किया जाय। ऐसे विचित्र घरमें पहुँचकर कमलाको सदा यही चिन्ता बनी रहती थी, कि मैं यहाँ रहते हुए, अपने पिताके पद-चिन्होंपर कैसे चल सकूंगी ?

लाला करमचन्द, धन, मान और प्रतिष्ठामें देहलीके उन लोगोंमें थे, जिनकी संख्या उंगलीकी पोरियों पर समाप्त हो सकती है। समस्त प्राणियोंपर श्रद्धा रखने और उनसे प्रेम करनेका अधिकार सेठजीके परिवारकी पैत्रिक सम्पत्ति थी। लेकिन लाला करमचन्द कमलाका विवाह करनेमें एक भूल कर बैठे। अपने दामादकी सुन्दरता और जल प्रवाहकी तरह प्रतिदिन आनेवाली सम्पत्तिके चित्रकी ओर तो उन्होंने देख लिया, पर उसके मनकी तसवीर नहीं देखी। उन्होंने यह नहीं समझा, कि दो हृदयोंकी एकता रुपयोंकी थैलियोंपर बैठकर नहीं, मनकी उदारताके कुञ्जमें बैठकर होती है।

इससे पहले कमलाके विवाहकी कई जगह बात चली थी, पर अन्तमें लालाजी धनके पहाड़को देखकर अपनी बुद्धि खो बैठे और वहीं रिश्ता कर दिया। लड़केका नाम था राधाकृष्ण। सिरपर घुंघराले बाल, अधकटी मुंछें, गौरवर्ण, मझोला क़द। सब कुछ अच्छा था। पेटमें कुछ विद्या भी पड़ी हुई थी, व्यवहार वैसा ही था, जैसा

उनके बड़ोंसे चला आता था। उनके घरके लोग बुद्धि-बलसे रुपया बटोरना जानते थे, लेकिन इसके सदुपयोग करनेका मार्ग उन्हें न आता था। लाला करमचन्दने देखा, कि इनके यहां बड़ी आलीशान कोठी है, बाग़-बगीचे हैं, खासी बड़ी जिमींदारी है और देहलीके रायसीनेमें भी तीन कोठियां हैं, जिनसे काफी आमदनी होती है। लड़कीको सुखी रखनेके लिये इससे अधिक और किस वस्तुकी अवश्यकता है? लेकिन लालाजीने यह नहीं सोचा, कि पेटकी भूख और मनकी भूख एक चीज़ नहीं हैं, दोनों एक धातुसे बनी हुई नहीं हैं। जिस दस्तावेज पर दो हृदय मिल कर दस्तखत करते हैं, प्रेमके राज्यमें वही प्रामाणिक समझा जाता है। इसी दस्तावेजपर जीवनका सुख-दु:ख निर्भर होता है। लेकिन कमलाका रिश्ता करते समय, धनकी चकाचौंधमें फँसकर, लाला करमचन्दको इस ओर देखनेकी फ़ुरसत ही न मिली।

स्त्रियोंको अन्त:पुरमें परदेसे ढका जा सकता है, पर उनका हृदय किसी प्राचीरके भीतर बंद नहीं किया जा सकता। किसीको एक पैसा या एक मुट्ठी अन्न दे देनेसे, घर भरके तमाम आदमी चिल्ला उठते थे—'बहू-बेटियोंको ऐसा फालतू खर्च करनेकी आदत नहीं रखनी चाहिये। इस तरह तो कुबेरका खजाना भी खाली हो सकता है।'

कमला इन बातोंसे घबड़ा जाती थी। भला, इनको रुपये-पैसे सोने-चान्दीकी क्या कमी पड़ी है? एक पैसा दे देनेपर जिन्हें मूर्च्छा आने लगती है, एक मुट्ठी अन्न घरसे निकल जानेपर जिनके प्राण

निकलनेकी तैयारी करने लगते हैं, उनके साथ कैसे निर्वाह किया जा सकता है ?

एक दिनकी बात है, एक दुबला पतला बूढ़ा, दोपहरके समय, दरवाजेपर खड़ा भीख मांग रहा था। यह देखकर कमलाकी ननद रुक्मिणी भीतरसे चिल्ला उठी—अरे बाबा, भीख मांगनेका भी तो एक वक्त होता है। यहां क्या सदावर्त लगा हुआ है ? जाओ और कोई दरवाजा देखो।

रुक्मिणीके पहले वाक्यमें एक युक्ति थी। वह समय भोजन करनेका हो रहा था। लेकिन वह बूढ़ा भी तो बचे-खुचे, जूठे कूठे टुकड़े ही मांग रहा था। अदृष्ट देवताने उस बूढ़ेका वह मार्ग बंद कर दिया था, जहां रुक्मिणीकी बताई हुई युक्तिसे चला जा सकता था।

राधाकृष्ण अभी-अभी भोजन करने बैठा था। इस साल अनाज का बाजार मंदा पड़ा है, अभी तक खरीद बंद की हुई है। सोना कुछ तेज हुआ है, पर उसमें मुनाफा कुछ नहीं और माल भी बड़ी कठिनाईसे इकट्ठा होता है। रुईके व्यापारका बंबईके व्यापारियोंने सत्यानाश कर दिया। इतनी मिलें बनाकर खड़ी कर दीं, कि बिलायत भेजनेको कुछ बचता ही नहीं। चांदी लगातार नीचे गीरती चली जा रही है। क्या किया जाय, सौदा तो किसी न किसी चीजका करना ही पड़ेगा। राधाकृष्ण इसी तरहके विचारमें लीन था, कि भीख मांगनेवाले बूढ़ेने कुछ आगे बढ़कर कहा—बाबूजी, मैंने दो दिनसे अन्नका एक दाना भी नहीं खाया, बड़ी भूख लग रही है।

इस प्रकारकी प्रार्थना, प्रार्थीके समतुल्य भिक्षुकके हृदयमें भी करुणा संचार कर देती है। वह भी अपनी झोली टटोलने लगता है, कि इसमें कुछ है या नहीं। लेकिन राधाकृष्ण अपनी विचार धारा टूटनेसे क्रुद्ध हो उठा, मुंह लाल हो गया। रक्तवर्ण नेत्रोंसे बूढ़ेको देखकर कहा—अरे गधे, बेवकूफ, सुबहसे मेहनत करते-करते तो इस समय भोजनके दो कौर मिले हैं और अभी तू हिस्सा बँटाने आ पहुंचा, मानो इसका बाप कमा कर यहाँ रख गया है। बदमाश कहींका !

बेचारा बूढ़ा इस सत्कारके बाद, एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर अपना रूखा-सूखा मुंह लिये आगे बढ़ गया।

जिसने मनुष्य देह धारण किया है, वह कितना ही दरिद्री, कितना ही हीन और कैसा ही असमर्थ क्यों न हो, पर उसकी भी एक मर्यादा होती है। बूढ़ेके निराश लौट जानेसे कमलाके हृदयमें बड़ी चोट लगी। वह बेचारा एक-दो रोटी ही तो मांग रहा था। माँगनेवाला बनकर उसने मनुष्यके गर्वको दूसरोंके पैरोंके नीचे रौंदनेके लिये डाल दिया था, पर उसीके जैसे एक मनुष्यने उसकी रत्तीभर परवा न कर उसे निराश लौटा दिया। यह कैसे दुःख, कितने परिताप और कितने खेदकी बात है। धनी लोग अपनी इसी मनुष्यता पर इतना इतराते हैं ?

कमला स्थिर न रह सकी। वह जा रहा है, शायद चला गया है। मानो वह इस घरके समस्त कल्याणको अपने साथ बटोरे लिये चला जा रहा है। कमला उठी और एक दूसरे कमरेकी खिड़की

खोलकर खड़ी हो गयी। वह सोच रही थी, अपने सूटकेससे दो रुपये निकालकर इस बूढ़ेको दे देती, तो ठीक होता। लेकिन पति और ननदकी नजरोंसे छिपकर रुपया निकालना आसान नहीं था।

बूढ़ा भिक्षुक मेनगेटके दरवाजेसे दाईं ओरको चला जा रहा था, यह देखकर कमलाने अपने बाएं हाथकी सोनेकी चूड़ी निकालकर खिड़कीसे बाहर बूढ़ेके सामने फेंक दी। बूढ़ेने उसे उठाकर खिड़की की ओर देखा। तरुणी युवतीका ज्योतिर्मय मुख, करुणासे आर्द्र-नेत्र देखकर वह अपना दुःख भूल गया। कमलाकी करुणार्द्रताने बूढ़ेके क्षत विक्षत हृदयपर स्नेहका लेप चढ़ा दिया।

बूढ़ेने वही चूड़ी उठा और खिड़कीकी ओर देखकर कहा—माईजी, यह शायद आपकी गिर गयी है, यह लीजिये।

कमलाने कहा—आप यहांसे निराश होकर चले जा रहे हैं, हम लोग साक्षात् भगवान्‌को सामने पाकर भी उन्हें तृप्त न कर सके। यह आप ले जाइये और इस घरके लिये अपने हृदयकी दुराकांक्षा दूर कर दीजिये।

बूढ़ेने कहा—माईजी मैं रोटीका ही भूखा हूं, यह चीज़ मेरे किसी काम न आयेगी। भगवान् आपको सुखी करें।

बूढ़ा चूड़ीको खिड़कीमें रख कर आगे बढ़ गया। कमला अपने हृदयकी गहराईसे उठने वाले विश्वासको दबाकर नहीं रख सकी। व्यथित चित्तसे वह दूसरे कमरेमें चली गयी और तबीयत ठीक न होनेका बहाना कर उस दिन भोजन भी न किया। इस घरमें प्रति-दिन, कोई न कोई ऐसा ही काम होता था और ये लोग उसे बहुत

तुच्छ समझते थे। परन्तु कमलाके लिये, जीवनके इतिहासका एक बहुत बड़ा और प्राणान्तकर परिच्छेद होता।

रातके समय कमला पतिके पास पड़ी हुई थी। थोड़ी देर बाद ही राधाकृष्णका नाक बोलने लगा, पर उसकी आंखोंमें नींद नहीं थी। कोई भिक्षुक हाथ पसारनेपर भी खाली लौट गया हो, यह बात अपने पिताके घर कभी न देखी थी। वह तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी, कि भिक्षुकको एक मुट्ठी अन्न दिये बिना ही दरवाजेसे कैसे ठुकराया जा सकता है।

पलंग पर पड़ी कमला छटपटा रही थी। वह इस नयी जगहमें आकर अपनेको व्यक्त करनेके लिये प्रतिदिन उपाय ढूंढ़ा करती थी। जहां रहकर हृदयकी तृप्ति नहीं होती, वहां रहते हुए आयुकी वृद्धि करनेसे क्या लाभ ? जीवन क्या ऐसे ही खोनेकी वस्तु है ?

कमलाने करवट बदल कर देखा, पतिदेव घोर निद्रामें पड़े हुए हैं। अब वह चुप न रह सकी। वह अपनी भलाई-बुराई सभी कुछ पतिके हाथोंमें सौंपकर निश्चिन्त हो जाना चाहती है। निद्रित पतिकी छातीपर हाथ रखकर उसने क्या देखना चाहा था, इसे तो भगवान् ही जानते हैं। पर वह धीरे-धीरे पतिके शरीरको उंगलीसे हिलाने लगी। राधाकृष्ण जगकर बोला—क्या बात है ?

लेकिन कमलाने ऐसा भाव प्रकट किया मानो उसने कुछ किया ही नहीं है। नींदके आक्रमणसे राधाकृष्णका नाक फिर बोलने लगा। कमलाने फिर उसके शरीर पर हाथ फेरना शुरू किया। राधाकृष्णने

फिर जगकर कहा—यह क्या पागलपन कर रही हो ? रातभर सोने भी नहीं दोगी ?

इस बार कमलाने पतिका हाथ अपने दोनों हाथोंमें लेकर कहा—क्या मैं इस घरमें स्वतन्त्रतासे चल फिर सकती हूं ?

राधाकृष्ण पर नींद तो छायी हुई थी ही, वह हंस पड़ा। बोला तुम क्या आज नयी आई हो ? इतने दिनतक स्वतन्त्र नहीं रही ?

फिर कुछ गम्भीर होकर कहा—क्या आज कोई नई बात हुई है ?

—नहीं।

—फिर ?

कमलाने कुछ नहीं कहा। राधाकृष्णने भी और कुछ नहीं पूछा। उसके लिये कमलाके मनकी बात जाननेकी अपेक्षा सोना अधिक आवश्यक था। वह फिर सो गया।

(२)

कमला अपनी ससुरालमें शान्त होकर तो रहने लगी, पर उसका हृदय उत्तरोत्तर अशान्त होता चला गया। मनुष्यके स्वभावका बेग बुरे मार्गकी ओर जितनी शीघ्रतासे बढ़ता है, सन्मार्गकी ओर भी उसकी वैसी ही गति है। लाला कमरचन्दने अपनी लड़कीका मिजाज ही बड़े आदमियोंकासा नहीं बनाया था, बल्कि उसे कष्टसहिष्णुताकी भी काफी शिक्षा दी थी। ये लोग कमलाको अपनी आवश्यकताके अनुसार सङ्कीर्ण दायरेमें बन्दकर रखना चाहते थे, लेकिन अचानक कोई न

कोई ऐसी चोट उस दायरेकी नीवमें लग जाती थी, जिससे वह दायरा एकदम चकनाचूर होजाता था।

कमलाका जीवन जब पतिके घर इस प्रकार विचित्र परिस्थितके बीच बीत रहा था, इसी समय जगन्नियन्ताके विधानसे गंगाकी बाढ़ से पीडित लोगोंके आर्तनादसे देशभरका कोना-कोना गूंज उठा। कमला बाढ़ पीड़ित स्थनोंसे बहुत दूर थी, लेकिन उसके आर्तनाद की भयानक चीत्कारने कमलाके दिमागकी शिराओंमें भारी आघात पहुंचाया।

भारतके उत्तर पश्चिम प्रदेशमें गंगाकी जो भयानक बाढ़ आई थी, उसके प्रवल प्रवाहके मुखमें न जाने कितने गाँव, कितने कसबे, असंख्य नर नारी और पशु चले गये थे। इस भयानक विपत्तिका समाचार जो कोई भी सुनता, वही रो उठता।

लोग सहायताके लिये दौड़े चले जा रहे थे, बेचारे विपद्ग्रस्तों की किसी न किसी प्रकार रक्षा तो करनी ही चाहिये। जगह-जगह सहायताके केन्द्र खुल गये और अनेक स्त्री पुरुष झोली गलेमें डालकर सहायताकी भिक्षाके लिये निकल पड़े।

एक दिन स्त्रियोंका एक दल बाढ़ पीड़ितोंके लिये सहायता प्राप्त करने कमलाकी ससुराल भी पहुंचा। राधाकृष्ण उस समय घर नहीं था। स्वयंसेविकायें उनके दरवाजे के बाहर खड़ी होकर भजन गाने लगीं। उनकी सुरीली और करुणासे आर्द्र आवाज सुनकर घरोंकी स्त्रियां अपने स्थानों पर स्थिर न रह सकीं। काम छोड़कर बेचारी चारों ओरसे ताक-झाँक करने लगीं। कमला भी दरवाजेकी आड़में

आकर खड़ी होगई। रुक्मीणी भी आई, पर सेविकाओंका करुणा-पूर्ण भजन उसके ऊपर कुछ भी असर न कर सका। सेविकाओंकी कर्म-शीलता, परदुःख-कातरता पर उसके हृदयमें जरा भी सहानुभुति उत्पन्न नहीं हुई, होती भी कैसे, उसे तो आज तक इस मार्गका कुछ पता ही न था। उसका हृदय केवल सेविकाओंके सम्मिलित कण्ठस्वर और उनके गानेके ढँग पर ही उलझा रहा।

गीत समाप्त होनेपर सेविकाओंने अपनी झोली पसारकर कहा—प्रलयङ्करी बाढ़से पीड़ित लोगों की सहायताके लिये कुछ दीजिये।

यह सुनकर रुक्मीणीका मुंह उतर गया। बोली-घरमें मर्द कोई नहीं है, हम औरतें क्या दे सकती हैं?

सेविकाओंने कहा—और किसीकी जरूरत ही क्या है माताजी? बच्चोंका कष्ट देखकर मांके सिवा और किसका हृदय पिघल सकता है? एक बार अपने हृदयमें उनकी दशाका तो ध्यान कर देखिये।

रुक्मीणीने कहा—"सो तो मैं सब जानती हूं। मेरी एक बहनका घर भी उसी ओर है। उनका भी सारा घर-द्वार नष्ट हो गया है। पता नहीं बेचारी कैसे-कैसे दुःख उठा रही होगी?" सेविकाओंने कहा—ऐसी दशामें तो आप सभी कुछ जानती होंगी, आपसे क्या कहा जाय? लाइये कुछ भिक्षा दीजिये।

रूक्मीणीने कुछ झेंपते हुये कहा—क्या बतलाऊं, घरमें कोई मर्द तो है ही नहीं। उनके बिना कुछ नहीं हो सकता।

यह कहकर रुक्मीणी वहाँसे चली गयी।

रुक्मणीके जाते ही दो उज्वल और स्निग्ध नेत्र सेविकाओंके सामने आए। मानो वे नेत्र सेविकाओंके खाली हाथ लौट जानेसे उत्पन्न होनेवाले इस घरके अकल्याणकी कल्पना कर पीड़ित हो रहे हों। सेविकाओंने उन नेत्रोंके इस भावको लक्ष्य कर कहा—बहन, क्या आप कुछ देंगी ?

कमलाकी आंखें इस समय जलसे भरी हुई थीं। उसने फौरन् आगे बढ़ और अपने गलेका सोनेका हार निकालकर उनकी झोलीमें डाल दिया। इतनेपर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई। एक दोकी बात नहीं, असंख्य प्राणियोंकी जीवन-रक्षाके लिये लाखों-करोड़ों रुपयेकी जरूरत है ! पूछा कुछ कपड़ा भी चाहिये ?

—हां, बहन आजकल बाढ़पीड़ितोंकी लज्जा निवारणके लिये जल ही वस्त्रका काम कर रहा है। उन लोगोंके पास न इस समय घर है न झोंपड़ी। बेचारे दिन भर पानीमें ही पड़े रहते हैं।

कमला फौरन् अपने कमरेमें पहुंची। वह अपने ट्रङ्कसे धोबीकी धुली हुई ,सात-आठ धोतियां लिये बाहर आई, तो सामने रुक्मिणी मिल गई। कमलाको धोती ले जाते देखकर वह गरजकर बोली—इन्हें लेकर साहूकारकी बेटी कहां जा रही है ?

यदि कमला किसी गरीबकी बेटी होती तब, भी उसे यह गाली खानी ही पड़ती, हां तब शब्दोंमें कुछ भेद हो सकता था—बस।

अचानक सामनेसे बाधा पाकर कमलाने कहा, उन्हें देने।

बस, रहने दो अपनी इस नवाबीको। मालूम होता है, राजा कर्णकी बेटी हमारे यहां आई है !

यह कहनेके साथ ही कमलाको धक्का देकर नीचे गिरा दिया, बेचारी कमला चुटीली होकर पड़ी-पड़ी रोने लगी।

गृहस्थ घरोंकी महिमासे रुक्मिणी परिचित नहीं थी। उसने वह सभी कुछ कमलाको कहा जो वह कह सकती थी और उसने जो कुछ कहा, उसे सेविकाओंने अच्छी तरह सुना। यह कांड देखकर बेचारी सेविकाएं वहाँसे नौ-दो ग्यारह हो गयीं।

लेकिन यह काण्ड यहीं समाप्त नहीं हुआ। रुक्मिणी नीचे पहुंची, तो उसके छोटेसे लड़केने कहा—मां, मामीने अपने गलेका हार भी उन औरतोंको दे दिया है।

रुक्मिणी चकित हो उठी, उसकी आंखें ऊपरको चढ़ गयीं, बोली सच कहते हो ? दुष्टाने गलेका हार दे दिया है ? अरे वह तो सात-आठसौ रुपयेका होगा !

बच्चेसे और कुछ मालूम नहीं हुआ, तो वह ऊपर पहुँची। कमला उस समय भी पड़ी हुई रो रही थी।

रुक्मिणीने ऊपर आकर देखा, बच्चेकी बात ठीक थी। कमला का गला सूना पड़ा था। देखकर रुक्मिणीका खून खौल उठा, उसने कमलाका सिर उठा-उठाकर कई बार जमीनपर पटका, इसके बाद अलग बैठकर अपने भाईका नाम ले-लेकर रोने लगी। बोली—आज उस जोरूके गुलामको घर आने दो, तब देखूंगी, कि तुम इतनी साहू-कार कितने दिनसे हो गयी हो। आज तेरी चुटिया पकड़ कर घरसे न निकाला, तो मेरा नाम बदल देना।

इसी समय राधाकृष्ण भी आ पहुंचा, रुक्मिणीको उसकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कमरेमें घुसते ही वह समझ गया, कि आज कुछ भयानक काण्ड हुआ है। उसने घबड़ाकर अपनी बहनसे पूछा—क्या हुआ है ?

रुक्मिणीने कहा—हुआ है तुम्हारा और मेरा सिर। दुनियाँ भरसे छांट कर जो बहू तुम अपने घर लाए हो, उसे तुम्हारे घरका जरा भी मोह नहीं है, यह तुम्हें भिखमंगा बनाकर छोड़ेगी।

इसके बाद उसने खूब नमक-मिर्च लगाकर आजकी घटनाका वर्णन किया। राधाकृष्ण वज्राहतकी भाँति खड़ा हुआ अपनी बहनकी बातें सुनता रहा।

रुक्मिणी यद्यपि वहीं बैठी थी, परन्तु जिन चरणोंपर कमलाने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया था, उनकी ओर बढ़नेमें उसे ज़रा सङ्कोचका अनुभव नहीं हुआ। वह धीरे-धीरे राधाकृष्णके पैर पकड़ कर बोली—इन्होंने जो कुछ कहा है, सब सच है। मेरे सामने आज जो अग्नि-परीक्षा उपस्थित हुई थी, उसमें मैंने आपकी शक्तिको क्षीण नहीं होने दिया। इसके सिवा गहने पहनकर जो सुख प्राप्त होता है, आज उससे बहुत अधिक सुख मुझे प्राप्त हुआ है। कहो, आप नाराज तो नहीं हुए ?

कमलाकी ये बातें राधाकृष्णके हृदयको स्पर्श कर सकीं या नहीं, नहीं कहा जा सकता। वह कुरता उतारकर आराम कुरसीपर चुपचाप पड़ रहा।

यद्यपि ऐसे मामलोंमें राधाकृष्णके लिये धैर्य्य करना असम्भव था, लेकिन कमलाके विषयमें वह धैर्य्यसे काम लेना चाहता था। यह फालतू खर्च करती है, इसमें तो सन्देह नहीं, परन्तु यदि दबाया जाय, तो उस क्षतिकी पूर्ति हो सकती है। पहले भी कई वार ऐसा हो चुका है, सिर्फ इसके पितासे कहनेकी जरूरत है। परन्तु इस वारके दानकी मात्रा इतनी अधिक थी और वह इच्छाकृत इतना भयानक अपराध था, जिसकी ओरसे आंख मूंद लेना राधाकृष्णके बसकी बात न थी।

रुक्मिणी भी इस बातको अच्छी तरह समझती थी, कि यदि जोर डाला जाय, तो एक हार क्या ऐसे-ऐसे दस हार कमलाके पिता बनवाकर दे सकते हैं। उसे इस धननाशकी उतनी चिन्ता नहीं थी, उसके हृदयके एक दूसरे ही कोनेमें इस समय आग जल रही थो। जिन सेविकाओंको मैंने दान देनेका साधारण विश्वास दिलाना भी आवश्यक नहीं समझा, उन्हींको इसने मुझे पीछे ठेलकर इतने भारी मूल्यका गहना दे डाला! कमलाकी यह उदारता वह सह न सकती थी। उसकी पैशाचिक प्रकृति कमलाको किसी और तरहका दंड दिलाना चाहती थी। इसलिये उसने राधाकृष्णकी उत्तेजनाके समयको व्यर्थ नष्ट करना उचित नहीं समझा। वह वहीं बैठी-बैठी भाईकी हिंस्र प्रवृत्तियोंको उत्तेजित करने लगी

कुछ देर बाद राधाकृष्णने कमलासे हार दे डालनेके लिये कैफियत तलब की। कमला इतनी देर बाद समझी, कि थोड़ी देर पहले मैंने जो कैफियत दी थी, वह पर्याप्त नहीं समझी गयी। लेकिन एक

ही बातको वार-वार दोहराना उसे अच्छा न लगा, इसलिये वह चुप-चाप बैठी रही।

राधाकृष्ण कमलाको चुप देखकर और भी उत्तेजित हो उठा। उसने समझा, यह मेरे पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर न देकर अपमान कर रही है। वह क्रुद्ध होकर कमलाकी पीठपर लात घूंसे और चाँटोंकी वर्षा करने लगा। इसी समय उनकी पड़ौसिन विमला वहां आ पहुंची और कमलाको इस प्रकार पिटते हुए देखकर बोली—अरे राधाकृष्ण, तू क्या पागल हो गया है ? किसी पशुको भी इतना मारनेपर लोगोंके हृदयमें दया आ जाती है। तुम ऐसे नीच हो गये हो !

इसके बाद विमलाने कमलाकी पीठका कपड़ा उठाकर देखा, उसकी सारी कमर लाल हो रही थी। जगह-जगहपर हाथकी पांचों उङ्ग-लियाँ उसके मक्खनसे मुलायम शरीरपर उठी हुई थीं। विमलाने और क्रुद्ध होकर कहा—देखो, तुम लोगोंने यदि इसके ऊपर ऐसा अत्याचार किया, तो मैं अभी इसके पिताके पास खबर भेज दूंगी। आकर ले जायंगे, इसकी हड्डियां तो बची रहेंगी। आग लगे, ऐसे घरबार पर।

रुक्मिणीने तड़ाकसे जवाब दिया—हां, तुम ऐसी बात क्यों न कहोगी ? तुम्हें तो यह हमारे घरसे चुरा-चुराकर रुपये-पैसे और अच्छे-अच्छे कपड़े देती रहती है न ?

विमलाने इस घृणापूर्ण बातका कोई उत्तर नहीं दिया। वह धीरे-धीरे वहांसे चली गयी।

कमला न जाने कबतक वहीं पड़ी रही। पतिके कठोर हाथोंकी मारसे उसकी नस-नस दुख रही थी। लज्जाके भारसे उसने अपना मुंह साड़ीमें छिपा रक्खा था। संसारके मनुष्य, स्त्रियोंपर ऐसे-ऐसे अत्याचारोंका दावा करते हैं, यह सोचकर उसके आंसू बार-बार उमड़े चले आ रहे थे। बहुत देरतक वह उसी अवस्थामें पड़ी रही। इसीका नाम तो मृत्यु है, और मृत्यु किसे कहते हैं ?

जब कमलाको होश हुआ और उसने अपनी पीठपर हाथ फेरा तो पतिके कठोर हाथोंकी मारके निशान उसकी उङ्गलियोंके अनुभवमें स्पष्ट रूपसे आने लगे। उत्तेजना और क्रोधके कारण वह उठ बैठी और कागज़ कलम लेकर एक लाईन लिखी—'पिताजी, मैं बड़ी दुखी हूं, एक बार मुझसे मिल जाओ।'

इसके बाद उस चिट्ठीको, अपनी विश्वासपात्र दासीके हाथों लेटर-बक्समें डलवा दिया। दासी कमलासे बड़ा प्रेम करती थी। वह लौट कर आई, तो कमलाने पूछा—चिट्ठी डाकमें छोड़ दी ?

—हाँ।

कमलाने कुछ सोचकर कहा—अब वह लौटाई नहीं जा सकती ?

—नहीं वह लोग डाक तैयार कर रहे थे, अबतक तो वह कहीं-की कहीं चली गयी होगी।

कमला कुछ विचलित-सी हो उठी। सोचा, पिताजी आ पहुंचे तो उन्हें क्या जवाब दूंगी। जो बात कहनेके लिये उसने पिताजीको बुलाया है, उससे क्या आत्मतृप्ति होगी ? स्वयं हेय न होनेपर क्या

पतिका चित्र घृणास्पद बताया जा सकता है ? हाय, मैंने क्रोधमें आकर क्या कर डाला ?

कमलाके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

(३)

कमलाके पिता अपने मेरठके मकानमें रहा करते थे। देहलीके मकान और रायसीनेकी कोठियां किरायेपर उठी हुई थीं। सेठ करमचन्दने, इन लोगोंके व्यवहारसे क्रुद्ध होकर कमलाके पास आन जाना कम कर दिया था, लेकिन अपनी लाड़ली बेटीके दुःखकी खबर पाकर बे स्थिर न रह सके।

सेठ करमचन्द जब कमलाके घर पहुंचे, तो राधाकृष्ण अपने आफिसमें बैठा काम कर रहा था। करमचन्दने दामादको देखते ही पूछा—'कमला क्या बहुत बीमार है ? क्या बीमारी है ?' राधाकृष्ण चकित होकर ससुरकी ओर देखने लगा। उसके मुंहपर घबड़ाहटकी झलक थी। बोला—आइये बैठिये। नहीं, बीमारी-सिमारी तो कुछ नहीं है।

राधाकृष्णके मनमें सन्देह हुआ, कि उस दिनके मेरे पाशविक अत्याचारको सार्वजनिक रूप देनेके लिये शायद कमलाने चुप-चाप आयोजन किया है।

सेठ करमचन्द पहले तो कमलाके पत्र और राधाकृष्णकी बातोंमें सामञ्जस्य न पाकर कुछ सकुचाए, पर थे तो पिता ही। बोले—

पिताके हृदयमें अपनी सन्ताकी ओरसे न जाने क्या-क्या बातें उठा करती हैं ?

जी हां।

सेठजी वहांसे एकदम सीधे ऊपर जा पहुंचे। कमला उस वक्त रसोई में थी। उसने देखा, पिताजी आ रहे हैं। लज्जाके मारे उसका हृदय कांप उठा। कुछ देरके लिये बिना किसी कारण चूल्हेके पास बैठ गयी। उसका तमाम शरीर पसीनेसे तर हो गया। लेकिन वह जानती थी, कि पिताजीने सीढ़ीसे मुझे देख लिया है, ऐसी दशामें विलम्ब करना ठीक नहीं है। वह कुछ सम्हल कर पिताके पास आ पहुंची। करमचन्दजीने पूछा—आओ बेटी, तुमने दुःखकी बात लिखी थी, वह क्या बात है ?

कमला सिर नीचा किये हुए बोली—वह कुछ नहीं है। आपने तो इधरका रास्ता एकदम ही छोड़ दिया है।

—अच्छा, इसी लिये तुमने यह रास्ता पकड़ा है ?

बेटीका प्रेम देखकर सेठजीका कंठस्वर कुछ भारी हो चला था, उसे ठीक कर वे कुछ कहना चाहते थे, कि इस घरके लोगोंके आचरणको सोच कर चुप हो रहे। वे क्यों नही आते हैं, यह बात कमला भी अच्छी तरह जानती है और वे भी समझते हैं, फिर कहने से क्या लाभ ?

सेठजी कमलाको अपने पास बैठाकर उससे बातचीत करने लगे। बोले—भला तुमने मुझे बुलानेका यह कैसा उपाय निकाला ? घरके सब लोगोंने अन्न-जल छोड़ रक्खा है।

कमलाने सिर ऊंचा करके कहा—मेरे लिये ?

फिर कुछ सोच कर कहा—मुझमें ऐसा क्या लग रहा है, पिताजी ?

इसके बाद कमला अपने बूढ़े पिताजीसे लिपटकर अचानक रोने लगी। सेठजीकी आंखें भी गीली हो गयीं। यही तो संसार है! इसीका नाम मोह-ममता है और यही तो संसारका निरवच्छिन्न सुख है!

इस पितृस्नेहके स्पर्शसे कमलाकी अवरुद्ध अश्रुधारा अदम्य वेगसे प्रवाहित होकर पिताकी छाती भिगोने लगी। सेठजी भीतर ही भीतर कितना रोए, इसका कमलाको रत्तीभर पता न लगा। सेठजी बोले—बेटी, इस प्रकार रोकर मुझे दुःख क्यों पहुंचा रही हो ? मुझे तो तुम्हारी खैर-खबर बराबर मिलती रहती है, इसी लिये मैं आता नहीं।

इसी समय रुक्मिणी रसोईमें बैठी कमलाको बार-बार आवाज दे रही थी। उसे चिन्ता थी कि राधाकृष्णके पाशविक अत्याचारकी जो मर्मभेदी कहानी कमलाकी पीठर लिखी हुई है, कहीं अपत्यस्नेहके आधिक्यसे प्यार करते हुए वह अचानक प्रकट न हो जाय।

कमला लाचार हो पिताको अकेला छोड़कर रसोईमें चली गई। सेठ करमचन्द अकेले बैठना उचित न समझकर नीचे उतर विमलासे मिलने चल पड़े। विमला रिश्तेमें उनकी साली लगती थी। उसने सेठजीको आदर पूर्वक बैठा और कुशल प्रश्नादिके बाद

कहा—आप आ गये, यह अच्छा ही हुआ। इन लोगोंने तो बेचारी कमलाको मार-मारकर भुस बना दिया है।

सेठजीने तीव्र दृष्टिसे विमलाकी ओर देखा। इस एक ही वाक्य से उनके हृदयमें तीव्र ज्वाला-सी जलने लगी। उन्होंने चकित होकर पूछा—क्या कहती हो, मारते हैं ?

—मारते हैं ? मारते नहीं, खाल खींचते हैं—अभी चार पांच दिनकी बात है, उस दिन जो कुछ हुआ है, वह आप कमलाके तमाम शरीरपर देख सकते हैं। ऐसे पशुओं और गुण्डोंके हाथों भी कहीं कमला जैसी सुशील लड़की सौंपी जा सकती है ? और रुक्मिणी तो अपने भाईसे भी चार हाथ आगे रहती है।

सेठजीके सामनेकी खिड़की खुली हुई थी। शीतल पवन सरा-सराहटके साथ कमरेमें प्रवेश कर रहा था। सेठ करमचन्दके हृदयमें वह तेज छुरीकी तरह चुभने लगा। वह रुद्ध कण्ठसे बोले—मैं विवाहके कुछ दिन बाद ही समझ गया था कि कमलाका जीवन सुख-पूर्वक नहीं बीत रहा है। लेकिन ये लोग इतने नीच हो जायंगे, ऐसी आशा नहीं थी और कमलाके साथ ऐसे व्यवहारकी तो कल्पना भी न कर सकता था। यदि यही व्यवहार रहा, तो बेचारीका जीवन नष्ट हो जायगा।

विमलाने कहा—इसलिये आप इसे अपने साथ ले जाइये। इधर हम लोग भी दिन-रात तड़पते रहते हैं। रोज-रोज अपनी आंखोंसे ऐसी खून-खराबी नहीं देखी जा सकती।

सेठजीने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—इन लोगोंको किसी बातकी कमी तो है नहीं, भगवान्‌का दिया सब कुछ है, और कमलाको भी तुम अच्छी तरह जानती हो, फिर ये उपद्रव क्यों होते हैं ?

—इसका भी एक कारण है। यदि कभी कमला किसीको अपने हाथसे एक पैसा या एक मुट्ठी अन्न दे देती है, तो कुरुक्षेत्र हो जाता है। अब तो कमलाका दोष समझ गये हो न ? भगवान्‌ने उसे ऐसे हाथोंमें सौंप दिया है, जहां उसके गुण भी दोष हो गये हैं।

इसके बाद विमलाने उस दिनकी घटना सेठजीको विस्तारपूर्वक सुना दी।

सेठ करमचन्द एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर उठ खड़े हुए और फौरन् कमलाके कमरेमें जाकर बोले—बेटी जरा यहां आना।

कमला नहानेकी तैयारी कर रही थी, अभी-अभी जम्पर उतारा था, वह उसी अवस्थामें पिताके सामने आ खड़ी हुई। सेठजीने बिल्कुल सीधा प्रश्न किया—बेटी, ये लोग क्या तुम्हें मारते हैं ?

कमलाके हाथका अंगौछा यह सुनकर नीचे गिर पड़ा। उसने व्यस्त भावसे पूछा—कौन कहता है ?

कमलाने प्रतिवाद तो किया नहीं, पर उसका मुंह पिताके प्रश्नसे एकदम फीका पड़ गया। सेठजीने कहा—विमला कहती है, सुना है, अभी चार-पांच दिन हुए, इसी तरहका कोई भयानक कांड हो चुका है। तुमने दुःखकी बात लिखी थी, अब समझता हूं, वह झूठी

नहीं थी । तुम्हारे पत्रमें जो रहस्य छिपा हुआ था, उस पर विमलाने ही प्रकाश डाला ।

कमलाका मुंह और भी उतर गया । उसने जबरन हंसनेकी चेष्टा करते हुए कहा—आप भी न जाने किस-किसकी बातें सुना करते हैं ।

—नहीं बेटी, यह बात झूठी नहीं है ।

यह कहकर सेठजी कमलाकी ओर बढ़े, वह नहानेके लिये जम्पर निकाल चुकी थी, इसी लिये उसके शरीरपर साड़ीके सिवा और कुछ कपड़ा न था । करमचन्दने साड़ी उठाकर कमलाके शरीर और पीठकी दशा देखी, तो क्रोधके मारे उनका मुंह लाल हो उठा । वे फौरन् राधाकृष्णके पास जाकर बोले—मैं कमलाको अभी इसी समय ले जाना चाहता हूं ।

ससुरकी उग्र मूर्ति देखकर राधाकृष्ण घबड़ा गया । पूछा—क्यों ?

सेठजीने गम्भीर स्वरसे कहा—अपने इस प्रश्नका उत्तर तुम अपने आत्मासे पूछ सकते हो । मैं तुम्हारे पिताके समान हूं, ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये वाध्य कर मेरा मुंह अपवित्र करना ठीक नहीं है ।

राधाकृष्णकी समझमें मामला आ गया । वह मुंह भारी करके बोला—इस वक्त तो उसका जाना नहीं हो सकता । इससे हम लोगोंको बहुत कष्टका सामना करना पड़ेगा ।

—तुम्हारे कष्टकी ओर देखनेकी मुझे आवश्यकता नहीं है। अभी-अभी कमलाको विदा करनेका प्रबन्ध करो, नहीं तो मैं पुलिस की सहायता लेकर उसे ले जाऊंगा। मारके निशान अभीतक उसके शरीरपर मौजूद हैं।

ससुरकी बातोंसे राधाकृष्ण समझ गया कि कमलाने उस दिनकी घटनाका भँडाफोड़ कर दिया है।

राधाकृष्णके पास अतुल सम्पत्ति थी, पर वह पुलिससे बहुत डरता था। ससुरकी तेजस्विताका भी उसे खूब पता था। फिर भी वह कुछ ऐंठके साथ बोला—ऐसी दशामें आप ले जा सकते हैं, पर यह याद रक्खें, इस घरके साथ फिर उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा।

करमचन्दने हंसकर कहा—यह मैं अच्छी तरह जानता हूं बच्चा, इस समय मुझे उसके सुखकी नहीं, जीवन बचानेकी चिन्ता है, उसने क्या अपराध किया था? बाढ़ पीड़ियोंकी सहायताके लिये अपना हार ही तो दे दिया था। तुम्हें मालूम है, उसकी मांने अपने जीवनमें कितना दान किया था? पूरे तीन लाख रुपये का। कमला उसी मां की लड़की है, उसने अपने गलेका हार उतारकर दे दिया, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

इसके बाद राधाकृष्णने कुछ नहीं कहा।

कमला दरवाजेकी आड़में खड़ी पिता और पतिके कथोपकथन सुन रही थी। पिताकी अन्तिम बात सुनकर वह फिर ऊपर चली

गयी। सेठजीने कमलाके पास पहुंचकर कहा—आओ बेटी, इस नरकमें तुम्हारा कोई काम नहीं है, मेरे साथ चलो।

ये सब घटनाएं इतनी शीघ्रतासे हो गयीं थीं, कि कमला अपने कर्त्तव्यका निश्चय न कर सकी थी। उसने सोचनेके लिये कुछ समय लेनेके लिये पिताके गलेमें हाथ डालकर कहा—पिताजी आपने अभीतक कुछ खाया नहीं ?

सेठजीने कमलाको छातीसे लगाकर कहा—बेटी, मेरी चिन्ता न करो और चलनेके लिये तैयार हो जाओ। इस घरमें अब एक मिनट भी ठहरना ठीक नहीं है। तुम्हें मैंने जीवित देख लिया है, इसके लिये मैं भगवान्‌को धन्यवाद देता हूं।

(४)

सेठ करमचन्द कमलाको ले तो गये, पर यह कलङ्क-कथा उन्होंने किसीको सुनाई नहीं। कमलाको पिताके यहाँ आए एक वर्ष पूरा हो गया। पहले तो वह पतिके अत्याचारोंसे परित्राण पाकर कुछ निश्चन्त-सी रही, लेकिन जब उसका मन स्थिर हुआ और सोचने-विचारने योग्य बुद्धि उसके दिमाग़में आई, तो उसके मनमें होने लगा—'मैंने आत्मदानका मार्ग छोड़कर यह जीम्मेदारीसे भाग जानेका रास्ता क्यों पकड़ा ?' आत्म विस्मृतिके दरवाजेसे वह क्यों भाग आई है ? इससे तो मेरा आत्मा बहुत कुछ खर्व हो गया है। माता-पिताके अपरिमित स्नेहसे अपने आप ही सिर नीचा हो जाता है। यहाँ किसी वस्तुका अभाव तो है नहीं, लेकिन तृष्णा क्यों नहीं

मिटती ? तृष्णाके दूर करनेवाली वस्तु तो मानों वहीं छुट गयी है। उस घरमें जो वायु आता है, जो चिड़िया वहां बैठकर गाना गाती हैं, जो पुष्प अपनी सौरभका विस्तार करते हैं, वहांके आकाशमें जो तारागण उदय होते हैं, यहां आनेके बाद मानों वे सब जीवनकी व्यर्थताका संदेश दे रहे हैं। वहां मानों सदा ही वसन्तका मलय पवन चलता रहता था, पर यहां क्या है, केवल अन्धकार ! हाय मैंने कैसी भूल कर डाली। लोग न जाने क्या-क्या काना-फूसी करते रहते हैं, लड़की ससुराल क्यों नहीं जाती ? भला ऐसी जवान बेटी क्या घरमें रखनेकी चीज़ है !

कमलासे पास पिताके घर रहते हुए सभी कुछ था, अच्छेसे-अच्छा खाना, कीमतीसे कीमती गहने, दास-दासी, घोड़ा-गाड़ी, मोटर आदि, पर वह इनमेंसे एक भी चीज न छूती थी। कपड़े ट्रङ्कोंमें पड़े सड़ रहे थे, गहने आलमारियोंके अन्धेरे कोनेमें पड़े रोते रहते थे, दास-दासियोंसे उसका काम ही न पड़ता था। जिसका जीवन अन्धकार-मय हो जाता है, उसे बाहरका प्रकाश क्या प्रकाशित कर सकता है ? कभी नहीं। वह न कभी अच्छे कपड़े पहनती, न बालोंमें तेल डालती। संसारक्षेत्रमें इस निष्ठुर भावसे पराजित होनेकी कल्पना उसे रह-रहकर पीड़ित किया करती थी। सुख-दुःख दोनों ही भगवान्‌की लीला हैं। यदि उसके भाग्यमें दुःख ही लिखा है, तो राजप्रसाद क्या उसे सुख पहुंचा सकता है ? पिताका सुख-सम्पत्तिसे भरा घर उसे जो पीड़ा पहुंचा रहा है, पतिके घरमें उससे लाखवां हिस्सा भी कष्ट नहीं था। यह दुःख तो अब सहा नहीं जाता।

एक दिन मौका देखकर उसने पिताके सामने बात उठाई। कहा—पिताजी, यह तो थोड़े पापका भयानक दण्ड मिलनेकी जैसी बात हो गयी।

पहले किसी प्रसङ्गकी भूमिका नहीं उठाई गयी थी; इसलिये करमचन्दकी समझमें बेटीकी बात नहीं आई। वे कुछ दिनसे जानते थे कि कमला अपने हृदयमें किसी वेदनाको छिपाकर ऊपरसे हंसती रहती है, लेकिन अपने उन उदास नेत्रोंपर उसका कुछ बस न था, जो हृदयके दर्पणका काम करते थे। सेठजीने क्षणभर बेटीकी ओर देखकर पूछा—कैसा भयानक दंड बेटी ?

बचपनकी चपलता कमलामें इन दिनों रत्तीभर न रही थी, दृढ़ भावसे कहा—मैंने तो आपके सामने कोई नालिश की नहीं थी पिताजी। यदि मैं उस दिन जम्पर निकालकर आपके सामने न आ जाती तो, आज यह दण्ड न भोगना पड़ता। इसीलिये कहती हूं, कि थोड़ेसे पापका भयानक दण्ड मिल रहा है।

सेठजी यह सुनकर चकित हो उठे। आह, इसके हृदयके भीतर यातनाकी कैसी भयानक नदी बह रही है! उन्होंने स्थिर दृष्टिसे कमलाकी ओर देखकर पूछा—क्या तुम मेरठ जाना चाहती हो ?

कमलाने सिर नीचा किए हुए कहा—हाँ।

—लेकिन बेटी, वे तो तुम पर बहुत अत्याचार करते हैं।

—ऐसी घटना रुपये-पैसेके मामलेमें ही होती है।

सेठजीने कुछ सोचकर कहा—यदि मैं तुम्हारे खर्चके लिये बैंकमें कुछ रुपया जमा कर दूं ,तो ठीक होगा न ?

—हां, सम्भव है, ऐसी दशामें कुछ न हो। लेकिन·······

पिताने बेटीका वाक्य पूरा करते हुए कहा—तुम पुत्र नहीं हो, ऐसी दशामें तुम्हारे लिये इतना रुपया कैसे खर्च किया जा सकता है, तुम यही सोच रही हो ? अरी पगली, सन्तान सन्तान है, वह बेटा हो या बेटी। इसके सिवा मैंने भूलसे जो पाप कर डाला है, इस प्रकार उसका प्रायश्चित्त हो जायगा। अब मैं समझ गया हूं, कि लड़कीका सम्बन्ध किन-किन बातोंको देखकर निश्चित करना चाहिये। अब कोई अच्छा-सा दिन देखकर ससुराल भेज दूंगा।

—लेकिन पिताजी; मेरे चले जानेके बाद आपको पहलेकी तरह कष्ट तो न होगा ?

सेठजीने कमलाके सिरपर स्नेहसे हाथ फेरते हुए कहा—नहीं बेटी, अब मुझे बहुत समझ आ गयी है। जिस दिन मैं तुम्हें मेरठसे खींच लाया था, उस दिन तुम्हारे जीवनका एक ही पहलू मेरे सामने था, लेकिन यह मालूम न था, कि तुम भी नारी हो।

कमला एक निःश्वास छोड़कर वहांसे चली गयी।

इस हाथ दे, उस हाथ ले?

(१)

शाम का वक्त था, हलका-हलका वासन्ती पवन शरीरमें सन-सनाहट पैदा कर रहा था।

किशोरीमोहन और कान्ति एक दूसरेके सामने कुरसी बिछाए टेबिलके पास बैठे थे। इसी समय उन्हें मोटरका हार्न सुनाई दिया। किशोरीमोहन और कान्ति कुरसीसे उठकर कुछ आगे बढ़ गये। शङ्करको मोटरसे अकेले उतरते देख, किशोरी-मोहनने विस्मित होकर पूछा—यह क्या? अकेले क्यों आए?

शङ्करने कुछ लज्जित भावसे कहा—वे—वे नहीं आईं।

अपने इस संक्षिप्तसे वाक्यके बीचमें शङ्करने 'किसी तरह' कह डाला था, पर फौरन् संभल गया।

किशोरीमोहनका चेहरा उतर गया, पर कुछ कहा नहीं। कान्ति ने मुंह फुलाकर कहा—जाइये मैं आजसे आपके साथ नहीं बोला करूंगी।

सुन्दर और कमनीय मुखसे निकला हुआ यह अभिमानपूर्ण वाक्य शङ्करको बड़ा मोहक-सा प्रतीत हुआ। उसने कहा—इन त्रुटियोंमें मेरा जरासा भी अपराध नहीं है। मैंने अपने प्रयत्नमें

रत्तीभर भी कमी नहीं की। वे अपने पूजा-पाठ और नियम-धर्मके सामने किसी बातको आवश्यक नहीं समझतीं।

इस बात-चीतमें तीनों जने दुमंजिलेपर बने हुए एक सुसज्जित कमरेमें जा पहुंचे।

किशोरीमोहनका उत्साह बहुत कुछ ठंडा पड़ चुका था। वह एक कुरसीपर बैठ कर बोला—तुम किसी कामके आदमी नहीं हो शङ्कर!

शङ्करने बनावटी घबराहट दिखलाते हुए कहा—सच?

कान्तिने कहा—घबड़ानेकी बात नहीं है, आज सफल नहीं हुए, तो आगे कभी हो सकते हो। जो लोग तूफानमें पड़कर जीवन-नौकाकी-पतवार हाथसे छोड़ देते हैं, वे अकर्मण्य होते हैं।

किशोरीमोहनने जबरन हंसनेका प्रयत्न करते हुए कहा—यह सब शङ्करकी दुष्टता या बुद्धि-हीनता है। खैर, हम भी देखेंगे कि अपने प्रयत्नसे यह व्यूह भेदन कर उनके पास पहुंच सकते हैं या नहीं। तुम्हारी क्या सम्मति है, कान्ति?

कान्तिने शङ्करकी ओर गहरी दृष्टिसे देखते हुए कहा—इस मामलेमें मैं तुम्हारी सदा और सर्वतोभावसे सहायता करूंगी। मुझसे तुम्हारा यह उतरा हुआ चेहरा नहीं देखा जाता।

किशोरीमोहनने आश्चर्यचकित होकर कहा—ठीक है, मानों यह मेरा अकेला ही काम हो। क्या कल तुमने उनसे मुलाकात करनेकी इच्छा प्रकट नहीं की थी?

कान्तिने कहा—निश्चय इच्छा प्रकट की थी, परन्तु तुम्हें उनसे मिलनेकी जितनी तीव्र इच्छा है, मुझे उतनी नहीं है। क्यों ठीक है न ?

किशोरीमोहनने क्षुब्ध होकर कहा—यह समझना तुम्हारा बड़ा भारी अन्याय है।

कान्तिने चकित होनेका भाव दिखलाते हुए कहा—क्या यह अन्याय है ? तुम्हारे मनकी गुप्त बात प्रकट कर देना ?

किशोरीमोहनने हताश होकर कहा—तुमसे जीतना मुश्किल है, मैं अपनी हार स्वीकार करता हूं।

कान्तिने कहा—तो अब सुलह हो गयी समझो।

यह कहकर वह अपने पतिसे कुछ दूर जा बैठी।

किशोरीमोहनने विस्मित होकर पूछा—यह क्या ? तुम दूर क्यों जा बैठी हो ? सुलहका क्या यही नियम है ?

कान्तिने अपने पतिकी ओर पैनी दृष्टिसे देखकर कहा—लोगोंका और विशेषकर विद्वानोंका कथन है, कि आदमी हार जानेपर अछूत हो जाता है, उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। शक्तिहीन मनुष्यके पास किसीको नहीं रहना चाहिये।

शङ्करने पति-पत्नीके इस प्रेम-कलहमें वाधा देते हुए कहा—वसन्त-ऋतुके ऐसी सुन्दर संध्याके समयको आप लोग लड़नेमें ही बिता देंगे ? यह तो सङ्गीतकी संध्या और कविताका समय है।

कान्तिने अचानक गम्भीर होकर शङ्करकी ओर देखते हुए कहा—आप न तो गायक हैं और न कवि ही।

शङ्करने कान्तिके उत्तरसे विस्मित हो, उसकी ओर देखकर कहा—आपके इस अभियोगका क्या कारण है ?

कान्तिने अपने सूत्रका भाष्य करते हुए कहा—कारण यदि आप गायक और कवि होते, तो मेरे इस कण्ठस्वरमें आपको सङ्गीत भी मिल जाता और काव्य भी। खैर, मैं आपके कानोंको तो तृप्त कर ही नहीं सकी, इसलिये अब देखती हूँ, रसनाको तृप्ति कर सकती हूँ यां नहीं।

यह कहकर कान्ति उठ खड़ी हुई और चञ्चल कलेवरा तरङ्गिणी की तरह नाचती-सी वहांसे चली गयी। थोड़ी देर बाद चांदीकी दो तश्तरियोंमें कुछ मिठाई और कुछ नमकीन लेकर आ पहुंची। उसके पीछे ही पीछे नौकर चायका सामान :लेकर आ पहुंचा।

कान्तिने अपने कोमल और शुभ्र हाथोंसे चाय बनाकर दोनों मित्रोंके आगे बढ़ा दी। शङ्करने एक बार प्यालाके उस भाफ उठते हुए गुलाबी पानीकी ओर और एक बार उसको देनेवालीकी ओर देखकर कहा—वाह, कैसी सुन्दर है !

किशोरीमोहनने फौरन अपने मित्रकी ओर देखकर पूछा—क्या सुन्दर है ? चाय या चाय देनेवाली ?

कान्तिने कोपपूर्ण दृष्टिसे पतिकी ओर देखा।

शङ्करने कहा—दोनों ही।

कान्तिने उसी कोपपूर्ण भावसे कहा—तुम दोनों ही दुष्ट हो।

—लेकिने शास्त्र कहते हैं, कि अतिथि प्रत्येक दशामें क्षमा पानेके

योग्य होता है, अतिथिपर क्रोध नहीं करना चाहिये। उचित तो यह है, कि उसे मीठी-मीठी बातोंसे प्रसन्न कर गाना सुनाया जाय।

यह कहकर शङ्कर मुग्ध दृष्टिसे कान्तिकी ओर देखने लगा।

कान्तिने अपने सफेद चिट्टे, छोटे-छोटे दांतोंसे जीभ दबाकर कहा—हां, सच-मुच अन्याय हो गया है, मैं अभी इसका प्रायश्चित्त करती हूं।

यह कहकर कान्ति पियानोंके पास जा बैठी और दूसरे ही क्षण अपने—वीणा-विनिन्दित स्वरसे गाने लगी।

एक गीत समाप्त हो गया। जो गीत कान्तिने गाया, उसका भाव यह था, कि जन्मभर तपस्या करने और विरहकी अग्निमें जलने के बाद आज प्रीतमके मुख-चन्द्रके दर्शन हुए हैं। कवि इच्छा प्रकट करता है, कि यदि यह स्वप्न है—क्योंकि प्रतीक्षा करते-करते उसे यह निश्चय हो गया है कि वास्तविक जगत्में शायद ही प्रीतमके दर्शन हों—तो यह स्वप्न कभी न टूटे।

गीत पूरा होनेपर कुछ क्षण बाद शङ्करकी मोहनिद्रा भंग हुई। गीत समाप्त हो गया? वाह, ऐसा सुन्दर गीत, क्या इतनी जल्दी समाप्त हो जाना उचित है?

होशमें आनेपर शङ्करने किशोरीमोहनसे कहा—अब तुम भी कोई चीज सुनाओ।

किशोरीमोहनने म्लान मुखसे कहा—देखो भाई यह संसार लौकिकतासे भरा है और लौकिकता हृदयके तारसे बंधी हुई होती

है। इस लिये हृदयकी आज्ञाके प्रतिकूल नहीं चलना चाहिये। मेरे गलेका बेसुरा गाना सुननेके लिये तुम इतनी दूर आए हो?

कान्तिने निस्सङ्कोच भावसे कहा—खैर, गा तो वही देगा, जिसका गाना सुननेके लिये इतनी दूरसे आए हैं, पर तुम क्या उस समय गाओगे, जब ये अपने घर लौट जायंगे?

यह कहकर कान्तिने और भी दो गीत सुनाए। दोनोंही प्रेम सम्बन्धी गीत थे, पर शङ्करको पहले जैसा एक भी न प्रतीत हुआ। पहला गीत तो एकदम बेजोड़ था।

इसके बाद विदाईका नम्बर आया। दोनों पति-पत्नीने साथ आकर शङ्करको कारमें बैठाया।

आते वक्त शङ्कर खुद गाड़ी ड्राइव करके लाया था, पर घर जाते समय ड्राइवरके भरोसे छोड़कर आप पिछली सीटपर लेट गया।

गाड़ी चल पड़ी।

(२)

किशोरीमोहनके बङ्गलेसे शङ्करके घरका रास्ता कमसे कम पांच मील था, पर शङ्करको उस दिन ऐसा प्रतीत हुआ, मानो क्षण मात्रमें इतना बड़ा रास्ता समाप्त हो गया।

शङ्कर सोचता चला जा रहा था, कान्तिने प्रीतमके मुख-चन्द्रको पहले पहल देखनेकी बात अपने गीतसे व्यक्त की है। साहित्यमें इतने पदोंके रहते उसने यही पद क्यों गाया? क्या इसका कोई गूढ़

रहस्य है ? प्रीतम कौन है ? उसने किसका मुख चन्द्र देखा है ? वह कौन है ?

मैं ? इस प्रश्नके उत्तरमें 'मैं' कहते हुए उसका हृदय डोलने लगता था। उससे निश्चयात्मक रूपसे कुछ भी उच्चारण नहीं किया गया।

कान्ति गाते समय बड़ी प्रेमपूर्ण मधुर दृष्टिसे मेरी ओर देख रही थी। कान्तिने किसका मुख-चन्द्र देखा है, इस प्रश्नका उत्तर क्या उसकी दृष्टि नहीं दे रही थी ? ऐसी बातें क्या स्पष्ट रूपसे कही जा सकती हैं ? नहीं, अस्पष्टतामें ही इनकी मधुरताकी रक्षा होती है।

कारमें बैठकर शंकरने केवल यही एक बात सोची है और गाड़ी घरके दरवाजेपर जा लगी। इतनी जल्दी ? उस चलती हुई कारमें बैठे और इस बातको सोचते हुए शंकर ब्रह्माकी पूरी आयु बिता सकता था ! उस समय उसके लिये कान्तिकी चिन्ताको छोड़ना, उसका संसर्ग छोड़नेसे भी कठिन प्रतीत हो रहा था। मकान आ जानेपर इच्छा न रहते हुए भी शङ्कर कारसे उतर कर ऊपर चला गया।

सरला—शङ्करकी स्त्री—बिजलीकी रोशनी-सी जगमगाते हुए कमरेमें बैठी सन्तान-पालन और सन्तान-शिक्षाके सम्बन्धमें एक पुस्तक बंदकर बाहर जानेके लिये उठी ही थी, कि शङ्कर पहुंच गया। पतिको देखते ही सरलाका मुंह खिल उठा। पूछा—इतनी देर कैसे हो गयी ?

शङ्करने कहा—देर न हो, तो क्या हो, तुम तो कहीं जाना नहीं चाहती, इसलिये तुम्हारे स्थानकी पूर्ति भी मुझे ही करनी पड़ती है।

सरला—क्या मैं तुम्हारे साथ कहीं जानेको तैयार नहीं हूँ? लेकिन शाम होते ही मुन्ना सो जाता है। ऐसी दशामें उसे अकेले छोड़कर कहीं जाना मुझे अच्छा नहीं लगता और सच पूछो तो यह उचित भी नहीं है।

—उचित क्यों नहीं है? यह किस शास्त्रमें लिखा है, कि बच्चा होते ही स्त्रीको घरमें कैद होकर रहना पड़ेगा? शिवराम तो पुराना और विश्वासी नौकर है, उसके पास छोड़ जानेसे क्या हर्ज है? इसके सिवा दासियां भी तो हैं। ऐसी तो कोई बात नहीं हैं, जो तुम्हारे बिना घड़ी भर भी काम न चल सके।

सरला—मैं तुमसे कह तो चुकी हूं, कि मुन्नाको छोड़कर कहीं जानेकी मेरी इच्छा नहीं होती। इसके सिवा तुम्हें यह भी मालूम है, कि सासजी तो मुझे यहाँ आने ही देना नहीं चाहती थी, जब मैंने उन्हें मुन्नाको अच्छी तरह रखनेका विश्वास दिलाया, तब कहीं आने पाई।

शङ्कर—आज-कल समाजमें रहते हुए इतनी संकीर्णतासे काम नहीं चल सकता। किशोरीमोहन एक बड़ा बैरिस्टर है, उसकी स्त्री भी ग्रेजुएट है और अत्यन्त विदुषी है। मैं कैसा ही हूं, पर हूँ तो गांवका कोरा जिमिदार ही। इन लोगोंके साथ मिलनेसे हमें लाभके सिवा हानि नहीं हो सकती।

सरला—लाभ क्या हो सकता है, मेरी समझमें यह बात नहीं आती। कमसे कम ऐसी किसी लाभकी आशा तो है ही नहीं, जिसके लिये अपने कर्त्तव्यको एक ओर रखकर जाना आवश्यक हो।

और तुम गाँवके रहनेवाले क्यों न हो, पर बी० ए० एल०-एल० बी० जिमिदार हो। मैं यदि केवल तुम्हारे ही साथ हूं, तब भी मैं मूर्ख नहीं रह सकती। सच बात तो यह है, कि यहां आते ही मेरा दम घुटने लगता है। तुम ले आते हो, इसी लिये चली आती हूं, वरना मुझे देहलीसे रत्तीभर दिलचस्पी नहीं।

शङ्कर—अच्छा, मैं एक सीधी-सी बात पूछता हूँ। उन लोगोंके घर जाने और किशोरीमोहन तथा कान्तिसे मिलनेमें तुम्हें क्या आपत्ति है?

सरला—कोई आपत्ति नहीं है। अच्छी बात है, एक दिन दोप-हरके समय मुझे ले चलो, जब तुम्हारे मित्र कचहरी गये हों। मैं उनकी स्त्रीसे मिल आऊंगी।

शङ्कर—मेरे मित्र भी उपस्थित रहें तो महाभारत हो जायगा?

सरला—मैंने तो ऐसी बात नहीं कही?

शङ्कर—नहीं कही? साफ तो कह रही हो, और क्या कहा जाता है? तुम्हें क्या आपत्ति है, यह तो बतलाओ।

—यह मैं तुम्हें पूरी तरह न समझा सकूंगी। सच बात यह है, कि मेरा संस्कार वाधक होता है।

शङ्कर—किशोरीमोहनकी स्त्री मुझसे कैसे बात करती है? जो काम वह कर सकती है, उसे तुम नहीं कर सकती?

सरला—दो आदमी एक तरहके नहीं होते। इसके सिवा मैं पहलेही कह चुकी हूं, कि इससे कुछ लाभ भी तो नहीं है?

शङ्कर—लाभ नहीं है ? परस्परके भावोंके आदान-प्रदानसे एक प्रकारका निर्मल आनन्द प्राप्त होता है। यह लाभ क्या कम है ?

सरला—अपने इस 'निर्मल-आनन्द' की बात छोड़ दो। तुम्हारे पास रहनेसे आज मुझे कभी इस आनन्दकी कमी नहीं हुई और न आगे होनेकी सम्भावना ही है। और तुम जैसे कह रहे हो, यदि उस प्रकार न मिला जाय तो क्या भावोंका आदान-प्रदान नहीं होता ? उनकी स्त्री और मैं बातें करेंगी, तुम दोनों गप्पें लड़ाओगे। इस तरह भी बड़ी सरलतासे भावोंका आदान-प्रदान हो सकता है। दोनों अपनी-अपनी पत्नियों और पतियोंसे एक दूसरेका पूर्ण परिचय पा सकते हैं।

—तुम्हारे साथ बहस करनेमें पार नहीं पा सकता, तुम तर्क-वागीश हो।

—यह बात नहीं, मैं तर्क वागीशकी पुत्रवधू और बी० ए० एल-एल० बी० की पत्नी हूं।

—मेरे विशेष आग्रहसे एक दिन तुम किशोरीमोहनसे मिलो। नहीं मिलोगी ? तुम्हारे मिलनेसे मुझे उनके सामने बहुत झोंपना पड़ता है।

—अच्छी बात है, एक-दो दिन सोचकर जवाब दूंगी।

—यह ऐसी कौन विकट समस्या है, जिसे इतने दिन सोचनेमें बिताने पड़ेंगे ?

—देखो, मैं तुमसे प्रर्थना करती हूं, कि इतने दिनतक जैसे तुमने

मेरे तमाम अपराधोंको क्षमा किया है, वैसे ही इस वार भी कर दो। दो-चार दिनकी ही बात तो है।

यह कहकर सरला वहाँसे चल पड़ी। यह देखकर शङ्करने पूछा—लेकिन तुम जाती कहाँ हो ?

—तुम्हारे लिये खाना बनाने जाती हूं। पहला बना हुआ तो ठंडा हो गया।

—तुम इस समय बनाओगी, तब मैं खाऊँगा ?

—शाक भाजी तो तैयार ही है, सिर्फ चार-पांच परांठे बनाए देती हूं। सब सामान तैयार है, रत्तीभर देर न लगेगी।

—लेकिन मुझे तो इस समय रत्तीभर भूख नहीं है, मैं कुछ न खा सकूंगा।

—अपने मित्रके यहां ऐसा क्या अमृत खा आए हो, जो भूख एकदम बन्द हो गयी।

—अमृत नहीं, खाना ही खाया है। सच बात यह है, कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है, आज मैं न खा सकूंगा।

सरलाने फौरन आगे बढ़कर पतिके माथेपर हाथ रख गर्मीकी परीक्षा की। फिर बोली—यह कुछ नहीं है। आज तुम दिन भर न जाने कहां-कहां घूमे-फिरे हो, थकावट हो गयी है। थोड़ा आराम करते ही सब दूर हो जायगी। मैं आलूकी पिट्ठीके परांठे बनाकर लाती हूं, तुम तबतक आराम करो।

आलूकी पिट्ठीके परांठे शङ्करकी सबसे अच्छी खाद्य सामग्री थी। यह सुनकर उसने कुछ आपत्ति न की। सरला चली गयी।

कुछ देर बाद सरलाने भोजनका थाल लाकर पतिके सामने रख दिया। भूख न होते हुए भी शङ्करने उसे थोड़ी देरमें खाली कर दिया।

थोड़ी देरमें सरला अपना काम समाप्त कर पतिके पास आकर बोली—तुम सोनेका प्रयत्न करो, मैं तुम्हारा सिर दबाती हूं।

शङ्कर कपड़े निकाल और पैर फैलाकर पड़ गया। सरलाने लैम्प बुझा दिया और पतिके सिरहाने बैठकर प्रेमसे माथा दबाने लगी।

(३)

कृष्णाने सब बात सुनकर हँसते हुए कहा—बस यही बात है, जिसके लिये सोच—सोचकर मरी जा रही हो? यह तो कुछ नहीं है।

कृष्णा सरलाकी ननद थी, आगरा ब्याही थी। पति प्रसिद्ध वकील हैं। ससुरके घरमें उसकी बड़ी चलती है, घरके सभी उससे प्रेम करते हैं। सरलाने उसके पास चिट्ठी भेजी थी, कि मैं एक महान् विपत्तिमें फँसी हुई हूं। कृष्णा चिट्ठी मिलते ही अपने पतिके साथ आ पहुंची थी। उसके पति चलते समय कह गये थे, सहारनपुर जा रहा हूं, चार दिन बाद लौटूंगा, तब मेरे साथ चलनेको तैयार रहना।

सरलाने कहा—क्या करूं बीबीजी, मैं तो मूर्ख हूं, इससे ऐसी बातें मुझे पसन्द नहीं हैं।

कृष्णाने अपने मनमें कहा, तुम्हारे जैसी बुद्धि सभी स्त्रियोंमें होने लगे, तो संसार स्वर्ग बन जाय। फिर प्रकटमें बोली—इसमें इतना

सोचनेकी क्या बात है। भैयाको यह सनक सवार हुई है, तो उसे पूरा कर देना चाहिये। यदि तुमने बाधा दी, तो उसके और भी बढ़ जानेकी सम्भावना है। एकबार उनके मित्रसे मिल लो, फिर उन्हें जैसा आदमी देखना वैसा ही व्यवहार करना।

अच्छी बात है, लेकिन तुम्हें भी साथ चलना होगा।

—खैर चलो। भैयासे कहना, आज तीसरे पहर वे हम लोगों को अपने मित्रके यहां ले चलें।

सरलासे किशोरीमोहनके यहां चलनेकी बात सुनकर शङ्करको बड़ा आनन्द आया। उसी वक्त फोनपर अपने मित्रसे कह दिया, कि हम लोग तीसरे पहर आपके यहां पहुंचेंगे।

किशोरीमोहन सरलाको देखकर कृतार्थ हो गया। मनमें सोचा हां, शङ्करकी पत्नी सच-मुच सुन्दरी है। मुख क्या है, किसी चित्र-कारकी निर्दोष कल्पनाका साकार चित्र है।

कान्तिने हंसकर अपने पतिसे कहा—संसारमें सुन्दरियों और किशोरियोंकी जितनी संख्या बढ़ती है, तुम्हें उतना ही आनन्द होता है, क्योंकि तुम किशोरी—मोहन हो।

सरलाका मुंह लज्जाके मारे लाल हो उठा।

कृष्णाने व्यंगपूर्ण हास्यसे कान्तिके मुंहकी ओर देखते हुए कहा—वाह, आप तो बड़ी उदार हैं।

किशोरीमोहनने कहा—नहीं, इस विषयमें कान्तिको विशेष उदार बननेकी अभीतक जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि मेरा नाम किशोरीमोहन

होते हुए भी अभीतक मैं किसी किशोरीको मोहित न कर सका। मेरा नाम तो नयी सभ्यताके अनुकरण पर रखा गया है। आजकल जिसके पास जिस वस्तुकी कमी होती है, वह अपनी उसी वस्तुको दुनियाँके सामने बढ़ा चढ़ाकर दिखाना चाहता है। किशोरी-मोहन नामका भी यही रहस्य है।

कृष्णाने कहा—आपका यह क्षोभ निरर्थक है। कमसे कम एक किशोरीको तो आप मोहित कर ही चुके हैं। भारतके एक सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिककी राय है, भारतीयोंके लिये स्त्री सबसे अधिक सुन्दर होती है। इस हिसाबसे आप सब लोग किशोरीमोहन हो। आपकी स्त्रीकी बात अलग है, क्योंकि ये सच-मुच ही किशोरी और अनिन्द्य सुन्दरी हैं।

किशोरीमोहनने कृत्रिम क्षोभसे कहा—मुझसे यह भी तो नहीं हो सका। आपके सामने बैठी हैं, पूछ देखिये न।

यह सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी लोग हँस पड़े।

शङ्करको उस दिन अपनी उद्देश्य पूर्तिकी कुछ सुविधा नहीं हुई।

कान्ति उस दिन बीच-बीचमें अचानक गम्भीर हो उठी, शङ्कर-की ओर उस दिन उसने किसी विशेष दृष्टिसे नहीं देखा, फिर कृपा दृष्टिका तो कहना ही क्या है।

कान्ति गाने बैठी तो आर्यसमाजका एक भजन गाया, मानों वे किसी मन्दिरमें प्रार्थना करने आए हों।

घर लौटकर कृष्णाने कहा—सरला तू, बड़ी बेवकूफ है।

—सरलाने विस्मित होकर कहा—क्यों बीबीजी ?

—तू भैयाके साथ इनके घर नहीं जाना चाहती थी इसलिये।

बेवकूफ होने और पतिके साथ किशोरीमोहनके घर न जानेमें क्या सम्बन्ध है, सरलाकी समझमें यह बात न आई।

कृष्णाने कहा—शङ्कर बीच-बीचमें कान्तिकी ओर कैसे देख रहे थे, यह तुमने नहीं देखा ?

सरलाका मुंह पीला पड़ गया।

कृष्णाने यह देखकर कहा— यह तो सिर्फ एक तरहका मोह है, इसके लिये चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। मोह प्रेम नहीं होता, इसलिये शीघ्र नष्ट हो जाता है। उधर किशोरीमोहन भी जल्दी करना चाहता है, इससे और भी जल्दी मामला सुलझ जायगा।

—कैसे बीबीजी ?

—किशोरीमोहन तुमसे घनिष्ठता बढ़ाना चाहता है। पुरुषोंके साथ जब गैरोंकी स्त्रियां हँसी-दिल्लगी करती हैं, तो उन्हें बड़ा अच्छा लगता है, लेकिन जब वे देखते हैं कि दूसरे पुरुष उनकी स्त्रीके साथ उसी तरह निस्सङ्कोच भावसे मिलते-जुलते और हँसी-दिल्लगी करते हैं, तो, उनका दिमाग गर्म हो जाता है। शङ्करके नेत्रोंमें कान्तिके रूपकी मादकता समाई हुई है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन किशोरी-मोहनने अपने व्यवहारमें कुछ आगे बढ़ना चाहा, तो देखना क्या होता है।

सरलाने इसपर कुछ नहीं कहा, लेकिन उसके हृदयपर एक प्रकारका बोझ-सा लद गया।

(४)

इसके बाद कई बार किशोरीमोहन, कान्तिके साथ शङ्करके घर आया और कई बार शङ्कर सरलाको लेकर उनके घर पहुंचा। लेकिन कान्ति और सरलामें किसी प्रकारकी घनिष्ठता नहीं हो सकी। इधर सरला किशोरीमोहनके सामने जाकर एक प्रकारकी बेचैनीसी अनुभव करने लगती थी।

किसी छुट्टीके दिनकी बात है। शङ्कर अकेला किशोरीमोहनके बङ्गले पर पहुंचा। कान्ति उस समय कौचपर लेटी कोई अंग्रेजी उपन्यास पढ़ रही थी। मोटर हार्नकी आवाज सुनकर उसने खिड़की के पास जाकर देखा—शङ्कर आया है। लेकिन वह और दिनकी तरह शङ्करका स्वागत करनेके लिये नीचेके दरवाजेपर नहीं पहुंची और किताबको टेबिलपर औंधी रखकर चारपाई पर जा पड़ी। किशोरी-मोहन उस समय घर नहीं था।

शङ्करने कुछ देर तो नीचे खड़े-खड़े किसीके आनेकी प्रतीक्षा की, पर जब कई मिनट बीत जानेपर भी कोई नहीं आया, तो खट-खटाता हुआ ऊपर जा पहुंचा।

वहां बवर्चीसे मालूम हुआ, मेम साहब घर हैं और साहब बहादुर थोड़ी देर हुई कहीं चले गये हैं।

शङ्करका हृदय धड़कने लगा। मनमें एक प्रकारका अव्यक्त आनन्द प्रकट हो उठा, जिसकी तरङ्गोंने सारे शरीरमें फैलकर रोमांच पैदा कर दिया।

कान्तिके कमरेके सामने पहुंचकर शङ्करने कहा—जाग रही हैं ? मैं भीतर आ सकता हूं ?

भीतरसे उत्तर आया—निश्चय, हर समय।

शङ्करने भीतर पहुंचकर कहा—मुझे यह मालूम न था, कि मि० किशोरीमोहन घर पर नहीं हैं।

कान्ति पलंगपरसे उठ बैठी। बोली—किशोरीमोहनके न रहने पर किसी किशोरीको यहां आनेमें हिचक हो सकती है, किसी पुरुषको इससे क्या मतलब ? जब आप आ ही गये हैं, कृपाकर थोड़ी देर बैठिये

यह कहकर कान्तिने पास रक्खी हुई कुरसीकी ओर इशारा किया।

शङ्कर लज्जित भावसे कुरसीपर बैठता हुआ बोला—आप ऐसे बेवक्त पड़ी क्यों हैं ?

—कुछ अच्छा नहीं लगता।

—क्यों ? क्या शरीर अच्छा नहीं हैं ?

—ना, अच्छा नहीं है।

—तो आप आराम करें, मैं जाता हूं।

कान्ति पलंगपर पड़कर व्यंगपूर्ण स्वरसे बोली—जायंगे तो हैं ही, इसमें सन्देह ही क्या है ? किसीके घर पहुंचकर यदि मालूम हो, कि वे बीमार हैं, तो क्या वहां रुकना उचित है ? उसके आरामके लिये फौरन वापस हो जाना चाहिये। अच्छा यह तो बतलाओ,

क्या मैंने कोई ऐसी बात कही है, जिसका मतलब यह होता है, कि आकर बैठे रहनेसे मेरे आराममें ख़लल पहुंचेगा ?

—आप मेरी बातका गलत अर्थ न करें। मैंने इस दृष्टिसे नहीं कहा था।

इसके उत्तरमें कान्तिने कुछ नहीं कहा। शङ्कर भी चुप-चाप बैठकर कान्तिकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखने लगा।

कुछ मिनट बाद शङ्करने कहा—आपको बुखार तो नहीं हो गया।

कान्तिने लापरवाहीसे कहा—क्या मालूम।

—देखूं आपका शरीर ?

शङ्करने यह कहकर, आगेकी ओर झुक और कान्तिके ललाटपर अस्तव्यस्त पड़ी लटोंको पीछे हटाकर, अपनी लाल हथेली उसके माथेपर रख दी।

कुछ देरतक निस्तब्ध रहे। कान्ति आंख मूंदे पड़ी थी, इसी तरह शङ्करने देखा, कि कान्तिके नेत्रसे एक बूंद जल निकल कर तकियेपर गिर गया।

सुन्दरी युवतीके नेत्रोंका जल ! अच्छे-अच्छे तपस्वियोंके चित्तको भी डावाँडोल कर डालता है। शङ्कर तो एक साधारण मनुष्य था, उसके हृदयमें तूफान आ गया हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

शङ्करने काँपते हुए हाथसे कान्तिके आँसू पोंछकर कहा—आपकी आँखमें आँसू ! ऐसा तो मैंने कभी न सोचा था।

इस समय शङ्करकी इच्छा हो रही थी, कि कांतिके कपोलों और नेत्रोंका इतना चुम्बन करूँ, जिससे ये आँसू सूख जायँ, लेकिन उसमें इतना साहस न था।

एक वार के आँसू पोंछते ही फिर आँसू निकल पड़े। शंकरने घबराकर कहा —आप कृपाकर शान्त हो जायँ। यह तो बतलाइये आपको दुःख क्या है ?

कान्तिने कहा—मैं दिन भर हँसती खेलती रहती हूं, इसलिये आप लोग मेरे दुःखको समझ नहीं पाते। मेरा हृदय एकदम खाली है, शून्य है। आदमी क्या केवल धनसे तृप्त हो सकता है ? मैं अपने दुःखको बाहरी उपकरणोंमें फँसाकर भूलना चाहती थी, पर अब देखती हूं कि मुझसे यह नहीं हो सकेगा।

शंकरने विस्मित होकर कहा—मेरी समझमें तो कुछ नहीं आता, जरा स्पष्ट रूपसे कहिये।

—आप समझ भी नहीं सकते। आपके घरमें बच्चे हैं, उनके सहारे आप लोगोंका समय कट जाता है। आप यदि घर न हों; तो आपकी स्त्री बच्चोंसे अपना मनोरञ्जन कर सकती है, लेकिन मैं किसके भरोसे, किसकी आशामें अपना समय बिताऊं ? उफ, कैसा कष्ट है !

इसके बाद कान्तिकी हिचकी बंध गयी, उसने तकिये में अपना मुंह छिपा लिया।

शंकरने कम्पित कण्ठसे कहा—आप इतना हताश क्यों होती हैं, अभी तो आपकी वह उम्र बीत नहीं गयी, जिसमें बच्चे होते हैं।

—आपको पता ही नहीं है, ऐसा हो ही नहीं सकता। आप लोग आजकल अत्यन्त सभ्य हो उठे हैं, जरूरतसे ज्यादा सौन्दर्यज्ञानके अधिकारी होगये हैं, इसीके फलसे मेरी यह दशा हुई है। मैंने जान-बूझकर अपना यह सर्वनाश करने दिया है।

यह कहते ही कान्ति पलंगसे उठकर रूमाल से मुंह छिपाए दूसरे कमरेमें चली गयी।

शंकर कुछ देर तक तो अकेला बैठा रहा फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर नीचे उतर आया। जब वह अपनी कारमें सवार होने लगा, तब अचानक उसको ध्यान हुआ, कि अभीतक कान्तिके गर्म-गर्म आँसू उसके हाथपर चिपके हुए हैं।

उस दिन शंकर खुद ही गाड़ी ड्राइव करके लाया था।

कान्तिकी आजकी विचित्र बातों को सोचते हुए कारको अपने बंगलेकी ओर लेकर चला दिया।

बंगलेके करीब पहुंचकर वह हौर्न बजाने ही वाला था, कि उसने देखा किशोरींमोहनकी कार बरसातीमें पहलेसे ही खड़ी है। क्या कीशोरीमोहन भी मेरी ही तरह मित्र-पत्नीसे एकान्तमें मिलनेके लिये आया है ?

शङ्करने अपनी कार बाहर चुपचाप रोक दी और उससे उतरकर ऊपरकी ओर चला।

हाँ तो क्या किशोरीमोहन भी—इससे आगे वह कुछ न सोच सका। उसके नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं, शरीर काँपने लगा।

सीढ़ियोंके पास जो कमरा था, उसके बाहर आते ही शङ्करने सुना, किशोरीमोहन कह रहा है—भला यह तो बतलाइये, आप मुझसे इतनी लज्जा क्यों करती हैं ? अब तो अठारवीं सदी नहीं है, जो स्त्रियाँ रुपये-पैसेकी तरह अन्धेरी कोठरीमें बन्द रक्खी जांय ?

सरलाने नम्रतासे कहा—बात यह है, कि मैं आधुनिक सभ्यतासे सदासे कुछ दूर ही रही हूं। मैं एकदम दूसरी ही तरहके वातावरणमें उत्पन्न हुई तथा पली हूँ, इसलिये उसी तरह रहना पसन्द करती हूँ।

—यदि आप वर्त्तमान सभ्यतासे दूर हैं, तो हम लोग उस दूरीको दूर कर देंगे। चन्द्रमा सदा ही बादलोंके भीतर छिपा नहीं रह सकता। चन्द्र केवल बादलोंका ही नहीं होता, सारे संसारका होता है।

सरलाने झुंझलाकर कहा—मैं ऐसी बातें सुननेकी अभ्यस्त नहीं हूं और पसन्द भी नहीं करती, मुझसे ऐसी बातें न कीजिये।

सरला झुंझलाहटकी परवा न कर किशोरीमोहनने कहा—आप यदि ऐसी बातें नहीं सुनना चाहतीं, तो संसारके सामने इतना रूप लेकर क्यों आई हैं ?

सरलाने क्रुद्ध होकर कहा—मैं सुन्दर हूं या काली कलूटी डाइन हूं, यह कहनेका अधिकार मेरे पतिके सिवा और किसीको नहीं है।

किशोरीमोहनने सरलाके मुंहपर दृष्टि जमाकर कहा—आपके पतिके मित्रको भी नहीं ? लेकिन क्रोध आनेपर आपके मुंहकी सुन्दरता और भी अधिक बढ़ जाती है।

सरलाने दृढ़ स्वरसे कहा—आप मेरे पतिके मित्र नहीं हैं, यदि होते तो मुझे अकेला पाकर इस प्रकार मेरा अपमान न करते।

फिर कुछ शान्त होकर कहा—आप यहां बैठकर प्रतीक्षा कीजिये वे आने ही वाले हैं। मुझे और काम है, मैं यहांसे जाती हूं।

सरला उठकर चलने लगी।

—आपको सौगन्ध है, जो यहांसे जाँय, मैं इस समय आपकी शरणमें आया हुआ हूं।

यह कहते ही किशोरीमोहनने सरलाके अनिन्द्य-सुन्दर मुंहकी ओर देखते हुए, उसके चम्पे जैसी दोनों हाथोंकी उंगलियां पकड़ लीं।

सरला वहीं खड़ी होकर तीक्ष्ण कण्ठसे बोली—आप इतने नीच हैं, मुझे यह मालूम नहीं थां। आप फौरन् यहांसे चले जाइये, वरना नौकरसे कान पकड़वाकर निकलवा दूंगी।

यह कहकर सरला एक महरानीकी तरह अभिमान्पूर्ण गतिसे वहांसे चली गयी।

दरवाजेके पास खड़े शङ्करकी इच्छा हो रही थी, कि भीतर पहुंच कर किशोरीमोहनके प्राण निकाल दूं, लेकिन इसके साथ ही उसे यह भी याद आया, कि क्या मैं भी ऐसा ही नीच, ऐसा ही हेय, काम करके नहीं चला आ रहा हूँ? किशोरीमोहनने यदि मित्रताके विश्वास को नष्ट किया है, तो क्या मेरी भी यही स्थिति नहीं है? किशोरी-मोहनको दंड देनेका मुझे क्या अधिकार है?

मार खाये हुए कुत्तेकी तरह शङ्कर जीनेसे नीचे उतर आया। इसके बाद जोर-जोरसे पैर रखते हुए जीनेपर चढ़ने लगा। ऊपर पहुंचा, तो सामने किशोरीमोहन खड़ा था।

शङ्करको देखकर किशोरीमोहनने कहा—तुम बड़े विचित्र आदमी हो। छुट्टी समझकर तो मैं तुम्हारे यहां आया था, पर तुम्हारा पता ही नहीं।

शङ्करने कहा—मैं तो तुम्हारे पास ही गया था, तुम नहीं मिले तो लौट आया।

—तब तो बदला उतर गया। अच्छा अब मैं जाता हूं, बैठनेका समय नहीं है।

किशोरीमोहन नीचे उतर गया। शङ्करने उसकी ओर देखा तक नहीं और धीरे-धीरे उस कमरेकी ओर बढ़ा, जहां सरला थी।

इस प्रकार अचानक पतिको सामने देखकर सरलाके मुंहपर प्रसन्नता आना चाहती थी, पर उसको पीछे धकेलकर उदासी आगे बढ़ आई। वह दौड़कर पतिके गलेसे लगी और फूट-फूटकर रोने लगी।

शङ्करने उसके आँसू पोंछकर कहा—किशोरीमोहनको मैंने यहां से जाते देखा है, मैं मामला समझ गया हूं और कुछ अपने कानोंसे सुना भी है। मेरे अपराधके कारण ही, तुम्हें इस संकटका सामना करना पड़ा है, मुझे तुम क्षमा करो।

सरलाने पतिकी छातीपर अपना अश्रु प्लावित मुख रखकर कहा—मुझे कल ही घर ले चलो, मैं यहां एक भी दिन रहना नहीं चाहती।

अगले दिन शङ्कर और सरला अपने बच्चोंको लेकर घर चले गये।

नया रेल्वे स्टेशन

(१)

संग्रामपुर ग्रामसे करीब दो फर्लांगकी दूरीसे रेलकी पटरी चली जा रही थी। इस सुभीतेको ध्यानमें रखकर सेठ दानमलने सैकड़ों अरजियां भेजीं, पर रेलवे कम्पनीके कानों पर जूं तक न रेंगी और उसने संग्रामपुरका स्टेशन बनानेकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सेठ दानमल और गाँवके बहुतसे लोगोंका रुईका काफी बड़ा व्यापार था, इसी सिलसिलेमें उन्हें दूसरे-तीसरे दिन दिल्ली आना-जाना पड़ता था। गाँवसे मौजूदा स्टेशन तीन कोस पड़ता था और दिल्ली सात-आठ कोस दूर थी। इससे दिल्ली आने-जानेमें बड़ी दिक्कत होती थी। गाँवसे बैलगाड़ियों या मरे-गिरे टट्टुओंके ताँगोंमें बैठकर स्टेशन जाना पड़ता था और वहांसे दिल्ली आनेमें भी इससे कम कष्ट न होता था। दिल्लीसे माल लानेमें तो और भी अधिक मुसीबतका सामना करना पड़ता था। संग्रामपुर अच्छा बड़ा और प्रसिद्ध गाँव था, इसलिये प्रतिदिन बीस-पच्चीस आदमी वहां अवश्य ही आते-जाते थे। इसके सिवा माल भी बहुत काफी आता-जाता था। इन सब कारणोंसे सेठ दानमलको विश्वास हो गया था, कि संग्रामपुरमें स्टेशन बने बिना काम नहीं चल सकता, परन्तु रेलवे कम्पनी ऐसी बहरी हो रही थी, कि उसने कभी सेठजी

की प्रार्थना सुनी ही नहीं। सेठजीने कई अरजियाँ ऐसी भेजी थीं, जिनमें गाँवके रहनेवाले सभी लोगोंके हस्ताक्षर थे, परन्तु कम्पनीके किसी कर्मचारीने उस ओर ध्यान नहीं दिया। अन्तमें सेठजी थक कर बैठ रहे और सोच लिया, कि संग्रामपुरका स्टेशन नहीं बन सकता।

लेकिन सूझ किसी एककी सम्पत्ति नहीं होती। बूढ़े सेठ जिस समस्याको इतने दिनसे हल नहीं कर सके थे, उसे उनके लड़के जगन्नाथने हल कर दिया। उसने अपने पितासे कहा, कि यदि पाँच-सात हजार रुपया खर्च कर, दो-तीन लारियां संग्रामपुर और दिल्लीके बीच चलाई जाँय, तो यह कठिनाई दूर हो सकती है। लारियोंको सवारियाँ भी मिल सकती हैं, और हमारा माल घण्टे भरके भीतर दिल्ली पहुंच जायगा। इससे हमें तो लाभ होगा ही, पर गाँव वालोंको भी आराम हो जायगा।

परन्तु सेठजीको यह सलाह पसन्द न आई। बोले—मोटर किरायेपर चलानेका काम हमारे जैसे बड़े सेठोंको शोभा नहीं देता।

* * * *

कुछ दिन बादकी बात है। एक दिन सेठ दानमल दिल्लीसे लौट-कर संग्रामपुरके पासवाले स्टेशनपर उतरे। संग्रामपुरका अभयराम तांगेवाला, अपना तांगा लिये सामने खड़ा था। सेठजीने गाड़ीसे उतरते ही उसे देखकर कहा—अरे अभयराम, हम लोग भी तुम्हारे तांगेमें बैठेंगे, दो आदमियोंकी जगह रखना।

इस वक्त स्टेशन पर चार बैलगाड़ी और दो तांगे थे। मुसाफिर सवारियोंपर बैठकर गाँवकी ओर चल पड़े। अभयरामके तांगेमें सेठ दानमल, उनका बेटा और दो अन्य सवारियाँ बैठी थीं।

अभयरामके तांगेका घोड़ा बूढ़ा और थका हुआ था, इसलिये पांच आदमियोंके बोझको वह बड़ी मुश्किलसे खींच रहा था। सड़क खराब थी, घोड़ा कमजोर था, इसलिये बार-बार झटके लगते थे, तांगा कभी ऊपर पहुंचता था और कभी नीचे। उसके प्रत्येक चूलसे चर्र-चर्रकी ध्वनि उठकर सवारियोंको बेचैन कर रही थी। अभयराम घोड़ेको तेज चलानेकी कोशिश कर रहा था। कभी उसे चाबुक मारता और कभी चाबुककी डंडी। घोड़ेपर जब मार पड़ती, तो वह दस-पांच कदम तेज चलकर फिर अपनी पुरानी रफ्तार पर आ जाता। यह देखकर सेठ दानमलने पूछा—क्यों भाई, इसे कुछ दाना-वाना भी देते हो या नहीं ?

—देता हूँ सेठ जी।

—फिर यह ऐसा मन मारकर क्यों चल रहा है ?

—यह घोड़ा जरा हठी है, जरा सड़क पकड़ ले, तो यह हवासे बातें करने लगेगा।

हवासे बातें करनेकी बात कहनेका अभयरामको प्रतिदिनका अभ्यास पड़ा हुआ था।

परन्तु कुछ आगे बढ़कर घोड़ा अचानक खड़ा हो गया। यह देखकर अभयरामको बड़ा क्रोध आया। कहां तो वह अपनी सवारियोंसे हवासे बातें करनेकी बात कह रहा था और कहां यह एकदम

ही ठप हो गया। अभयरामने नीचे उतरकर घोड़ेको चार-पाँच चाबुक जमाए, कई बार डंडे लगाए, दस-पाँच गालियाँ दीं और रास पकड़कर खींची, घोड़ा दौड़ने लगा। उसके दस-पाँच कदम आगे बढ़ते ही अभयराम भी कूदकर उसपर सवार हो गया। तांगेपर भार बढ़ते ही घोड़ा ढीला पड़ गया। अभयरामकी कोड़ेबाजी फिर शुरू हुई, घोड़ा फिर दौड़ने लगा। इस बारका घोड़ेका दौड़ना एक भयानक कांडका सूत्रपात था। वह दस-बीस कदम ही दौड़ा था, कि अचानक ठोकर खाकर गिर पड़ा, तांगा उलट गया और सेठ दान-मलके मुंहसे एक चीख निकल गयी।

खैर, किसी तरह सबने मिलकर घोड़ेको उठाया, तांगा ठीक किया और फिर आगे बढ़े। सेठजीने कहा—अरे अभयराम, एक फेरेमें जब तू घोड़ेको इतना मारता है, तो चार फेरेमें न जाने क्या करता होगा। अरे जानवरके ऊपर दया करनेसे भगवान् भी प्रसन्न रहते हैं।

—परन्तु सेठजी, मुझे तो अपना और घोड़ेका दोनोंका पेट भरना पड़ता है न?

जगन्नाथने कहा—लालाजी, मोटर होती, तो ऐसी कोई दिक्कत सामने न आती। उसमें न घोड़ेको चाबुक लगानेकी जरूरत पड़ती है, न बैलको पैनी मारने की। इनके सिवा घोड़े या बैलोंकी गाड़ीमें बैठना जैन धर्मके अनुसार महा पाप है। इस लिये जहां तक हो, हमें इससे बचना चाहिये।

सेठजीके ध्यानमें आया, कि तांगेपर बैठकर घोड़ेको पिटवाना मामूली पाप नहीं है। और मोटरपर बैठनेसे गूंगे प्राणियोंपर यह मार पड़नेसे बच जाती है।

जगन्नाथने फिर कहा—मैं तो यह समझता हूँ, कि सरकारने रेल और मोटर चलाकर अनबोलते जानवरोंपर बड़ी दया की है। मालूम होता है, रेल, मोटरका अविष्कारक कोई बड़ा ही दयालु और धर्मात्मा आदमी था।

दानमल अनेक बार घोड़ा गाड़ी और बैल गाड़ीमें सफर किया करते थे। उन्हें यह भी मालूम था, कि बोझल गाड़ी खींचनेमें पशुओं को कितना कष्ट होता है और उनपर कैसी भयानम मार पड़ती है। पेट्रोलसे चलने वाली मोटर, पशुओंको उस दुःखसे छुड़ानेका विशेष साधन था। परन्तु आजसे पहले कभी उनके ध्यानमें यह बात न आई थी।

उपर्युक्त घटनासे एक सप्ताहके भीतर सेठ दानमलकी तीन लारियां जगन्नाथकी देख-रेखमें संग्रामपुर और दिल्लीके बीच दौड़ने लगीं। सेठजीको इससे काफी सन्तोष हुआ, उन्होंने समझा गूंगे जानवरोंके कंधेसे जुआ उतारनेका पुण्यकार्य करनेका अवसर मुझे भगवान्‌ने दिया है। सेठजीको मोटर चलानेमें पैसा कमानेसे अधिक धर्मका खयाल था।

(२)

सेठ दानमलकी मोटर चलनेसे पहले संग्रामपुरकी समृद्धि सलज्ज और गम्भीर थी, पर अब उससे चका-चौंध पैदा होने लगी। यद्यपि

रेलसे प्रतिदिन दस बीस आदमी आते जाते थे, पर मोटर लारियोंको भी काफी सवारियाँ मिलती थीं। बात यह थी, कि दिल्ली और संग्रापुरके आने-जानेवालोंकी तादाद बहुत बढ़ गयी थी। तीनों मोटर खचाखच भर कर कई बार आती-जाती थीं। आने जानेका सुभीता हो गया था, इस लिये यात्री भी बढ़ गये थे। स्टेशनसे लोगोंको लानेका काम भी सेठजीकी मोटर करने लगी थी। फल यह हुआ, कि बैलगाड़ियों और मरियल टट्टू वाले तागोंकी ओर कोई आंख उठाकर भी न देखता था। दूध पहले छः पैसे सेर बिकता था, अब तीन आने सेर हो गया। घी पहले एक रुपये सेर बिकता था, फिर दस छटाँक हो गया। मट्ठेके मटके भी मोटर पर सवार होकर देहलीकी गलियोंमें मारे-मारे फिरने लगे। रम्मो चौहानी एक दिन अपनी पड़ौसनसे बोली—बहन, पहले चार-पांच घड़ी मट्ठा यों हीं फेंक देना पड़ता था, पर अब सेठ दानमलकी मोटर हो जानेसे उसका प्रतिदिन डेढ़ रुपया मिल जाता है। दस आने मोटर किराएके निकाल कर चौदह आने मुफ्तमें बच जाते हैं।

दिल्ली और संग्रामपुरके बीच मोटर चलनेसे संग्रामपुर पर दो तरहका असर पड़ा। लोगोंको यात्रामें सुभीता हो गया, मुसाफिर बढ़ गये, घी दूधके पैसे अधिक मिलने लगे। पहले देहलीसे चला हुआ माल तीन दिनमें संग्रामपुर पहुँचता था। एक बार रम्मो चौहानीका लड़का बीमार हुआ, त्रिदोष हो गया था। पहले कई दिन तक घरेलू इलाज होता रहा, जब उससे कुछ लाभ न हुआ, तो देहली से डाक्टर बुलाया गया। १५ रुपये उसे फीसके दिये गये और

और मोटर भाड़ा, दवा-दारूमें पच्चीस रुपये खर्च हो गये, पर लड़का बच गया। यह देखकर रम्मो सेठ दानमलको आशीर्वाद देने लगी, भगवान् करें, सेठजी जुग-जुग जीते रहें, मोटर न होती, तो न डाक्टर आ सकता था, न लड़का बचता।

दूसरी तरहके प्रभावकी बात संग्रामपुरके लोगोंकी समझमें न आती थी। बात यह थी, कि देहलीकी बुराइयोंका प्रभाव संग्रामपुरके किसानों और बनियोंके युवकोंपर ही नहीं प्रौढ़ों और वृद्धोंपर भी पड़ता चला जा रहा था। किसना प्रतिदिन मट्ठा लेकर दिल्ली जाता और वहांसे पैसे इकट्ठे करके लाता था, यहतो सब जानते थे, पर यह कोई न समझता या जानता, कि वह वहांके होटलोंमें मजे भी लूटता है। गाँवके मोचीके बनाये हुए देसी जोड़के बदले, ब्राउन और काले चमकदार जूते लोगोंके पैरोंमें दिखाई देने लगे थे। किसीको एक रुपयेके मालकी जरूरत होती, वह देहली उड़ जाता और वहांसे चार-पांचका माल खरीद लाता। इस तरहके काफी लोग होगये थे। दूध बेचनेको जाने वाले भी सप्ताहमें दो-तीन बार सिनेमा अवश्य देखते थे। सेठ दानमलके पोते चन्दूलाल की तो घरकी ही मोटर थी, इस लिये वह अक्सर देहली जाता रहता था। घी, दूध, मट्ठा, घास आदि चीजोंका मूल्य पहलेसे अधिक मिलने लगा था, इससे संग्रामपुरके किसान बहुत प्रसन्न थे, परन्तु वे पैसे देहली जैसे उच्छृङ्खल शहरके आवागमनसे प्राप्त अनेक तरहके व्यसनोंमें खर्च हो जाते थे। किसानोंके जीवनसे सादगी और सज्जनता नष्ट होकर कृत्रिमता और स्वार्थीपन प्रवेश करता जा रहा था। भर पेट दूध पीने वाले अब बहुत

कम रह गये थे। घर-घरमें चायके प्याले खड़-खड़ाया करते। मोटरों का आवागमन शुरू होनेसे छः महीने बाद देहलीके एक दूकानदारने संग्रामपुरमें एक होटल भी खोल डाला था, जिसमें धीरे-धीरे काफी भीड़ लगने लगी थी।

(३)

दानमलका पोता चन्दूलाल तीन महीने तक संधिज्वरसे बीमार रहकर अभी-अभी अच्छा हुआ था। सेठजीको डाक्टरों, वैद्यों और हकीमोंको पांचसौ रुपये भेंट देने पड़े थे, दवा-दारूमें जो खर्च हुआ, सो अलग, परन्तु इतना खर्च होनेपर भी लड़का अच्छा होकर आज पहली बार बरामदेमें आकर बैठा था, इससे सेठजी मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे।

थोड़ी देर बाद सेठजीने कहा—बेटा थोड़ा दूध पीकर आज कुछ देरके लिये दूकानपर चलो। चंदूकी मां कहीं पास ही खड़ी यह सुन रही थी। उसने नौकरसे कहलाया—आज गायने दूध नहीं दिया, कहीं दूसरी जगहसे दूध मंगा दिया जाय, तो अच्छा है।

सेठजीने कहा—लोटा लेकर रम्मो चौहानीके घरसे दूध ले आओ।

करीब एक घंटा बाद नौकर दूध लेकर आया। सेठजीने झल्लाकर कहा—अरे, जरासे काममें इतनी देर करदी ?

क्या करूं सेठजी, रम्मोके यहां दूध नहीं मिला, जमनाने कहा, हमारा सारा दूध दिल्ली चला जाता है, और फत्ते जाटने भी इसी तरह की बात कहकर टरका दिया।

सेठजी नौकरकी कैफियत सुनकर स्तब्ध हो गये। पूछा—फिर तू दूध कहाँसे लाया ?

—तीन आने खर्चकर होटलसे लाया हूँ।

सेठजी एक प्रकारकी चिन्तामें पड़ गये। इतने बड़े गाँवमें सेर भर दूध कहीं नहीं मिला और तीन आने खर्चकर होटलसे लाना पड़ा उनके जैसे बूढ़े आदमीके लिये यह कम आश्चर्य की बात न थी। खैर, सेठजी भोजन कर और चन्दूलालको साथ ले दूकानको चल पड़े। रास्तेमें उन्हें चार चमार एक मरे हुए घोड़ेको ले जाते मिले। सेठजीने पूछा—क्यों भाई, यह किसका घोड़ा मर गया ?

—अभयरामका सेठजी।

—तांगेवाले अभयरामका ?

—जी—हाँ।

सेठजी दूकानपर पहुंचे, तो देखा जगन्नाथ मोटरकी आमदनी-खर्च लिख रहा था और रम्मो चौहानी, जयराम मोची, अभयराम ताँगेवाला तथा और भी एक-दो आदमी बैठे हुए थे। अभयरामकी आँखोंसे आंसू जारी थे। दानमलने वहां पहुँचते ही कहा—अभयराम तेरा घोड़ा तो मर गया है ?

—हां सेठजी, आपने जबसे मोटर चलाना शुरू किया, मैं तो तभी से इसे मरा हुआ समझ रहा था, इतने दिन जीकर तो वह मुझे बरबाद कर गया।

तो भाई, इसमें मेरा क्या कसूर है ?

—आपका नहीं तो मेरी तकदीरका कुसूर जरूर है। जब थोड़ा कमाता था, तो मैं उसे भी खिलाता था और अपना भी पेट भरता था। पिछले बारह महीनेमें मैंने घरके बरतन और कपड़े बेचकर अपना और उसका गुजारा किया है। दया करके आप दो मन जुआर दीजिये, नहीं तो उसके साथ मुझे भी मरा हुआ समझिये।

सेठजी अभयरामके आँसुओंकी ओर देखने लगे, पर कुछ बोले नहीं। फिर रम्मो चौहानीकी ओर देखकर पूछा—कहो चौधरन तुम कैसे आई हो?

रम्मोने घूंघटकी आड़से कहा—सेठजी मुझे पचास रुपया दे दो, ब्याज जो तुम्हारी इच्छा हो लगा लेना।

—तुम्हें अचानक रुपयोंकी क्या जरूरत आ पड़ी? आज कल तो दूध, घी और मट्ठेसे अच्छी आमदनी हो रही है?

—खाक आमदनी हो रही है! किसना तीन बार बीमार पड़ा, जिसमें सौ रुपयेसे ज्यादा खर्च हो गया। अब उसकी बहूको गौना लाना है, इसलिये आपके पास रुपये लेने आई हूँ।

—बीमारीमें किसीका क्या बस चल सकता है, यह तो प्रारब्धकी बात है। देखो हमारे ही यहां चन्द्रकी बीमारीमें हजार रुपये खर्च हो गये।

बीमारी भी ऐसी-वैसी नहीं थी, सेठजी पानीकी तरह रुपया खर्च करना पड़ा। लड़का ऐसा बेवकूफ है, देहलीमें जाकर रोज होटलसे कच्चा पक्का खाकर आता था। इसपर भी रातमें सिनेमा देखकर नींद खराब करता। चायके प्यालोंकी तो गिनती नहीं।

अपने चन्दूसे पूछिये न, दोनों ही साथ-साथ घूमते फिरते थे। ऐसी हालतमें बीमार न पड़ें तो क्या हो।

सेठजीने चन्दूकी ओर देखा, उसने शरमाकर मुंह नीचा कर लिया। सेठजीने कहा—हमारे संग्रामपुरको भी देहलीका चस्का लग गया है।

इसके बाद सेठजीने कुन्दनको सामने देखा। वह बोला—सेठजी कुछ अनाज लेने आया हूं।

अरे तुझे अनाजकी क्या जरूरत है? अभी थोड़े दिन हुए तो खेती कटी है?

—परन्तु खेतसे तो मन भर अनाज भी घर नहीं पहुँचा। इस साल तो चौमासेमें भी आपसे कुछ उधार लेना पड़ेगा।

—क्यों भाई ऐसी क्या बात है? तुम्हें उधार लेनेकी क्या आवश्यकता आ पड़ी?

—पहले तो कभी ऐसा मौका नहीं आया, पर इस साल लेना पड़ेगा। खेतसे अनाज आए या न आए, पर गर्मीके दिनोंमें गाड़ी भाड़ेसे अच्छी रकम मिल जाती थी। जबसे आपकी मोटर चलने लगी, तबसे किराया मिलना मुश्किल हो गया। क्या करूं सेठजी, बैल बीमार हो रहा है, लोग कहते हैं इसे घी पिलाओ, पर खानेको तो पासमें अनाजका दाना नहीं है, बैलको घी कहाँसे पिलाऊँ? लाचार होकर एकको गोशालामें भेज दिया और दूसरा बेच डाला।

सेठजीने जगन्नाथको सामने देखा। वह मोटरोंके आय-व्ययका हिसाब जोड़ रहा था। पिताको अपनी ओर देखते हुए देखकर बोला—

लालाजी, इस महीने साढ़े सातसौकी आमदनी और सवा पांच-सौका खर्च हुआ, इस तरह सवा दोसौ रुपये मुनाफा हुआ।

जयराम मोचीने कहा—सेठजी, मैं भी पचीस रुपये लेने आया हूं।

—अरे जयराम, आज-कल लोगोंने जूते पहनने छोड़ दिये हैं क्या, जो तुझे रुपयोंकी कमी पड़ गयी ?

—जूते तो सभी पहनते होंगे सेठजी, पर न जाने क्यों इस साल मेरा काम बहुत ढीला रहा।

—पिताजी, मैं घर जा रहा हूँ, दवा पीनी भूल गया था।

चन्दू यह कर उठ खड़ा हुआ। क्रूम लेदरके चमचमाते और चरमराते हुए बूट पहने वह दूकानसे नीचे उतरा। सेठजीका ध्यान जूतोंकी चरमराहटसे इस ओर आकर्षित हुआ, तो उनके हृदयमें बड़ी ग्लानि हुई। वे एक दीर्घ निःश्वास लेकर और तकियेमें मुंह छिपाकर बैठ गये।

(४)

भों-भों-भों करती हुई एक मोटर सेठजीकी दूकानके सामने आकर खड़ी हो गयी, उसमेंसे दो आदमी उतरे, एक यूरोपियन और दूसरा पारसी। पारसीने पूछा—सेठ दानमल आपका ही नाम है ?

—जी हाँ कहिये क्या काम है ?

आपने संग्रामपुरका स्टेशन बनवानेके लिये रेल्वे कम्पनीके पास अरजी भेजी थी ?

—जी, हाँ भेजी थी, अब उसका क्या मामला है ?

—आपके गाँवमें बनियोंके घर कितने हैं ?

—थोड़ेसे ।

—थोड़ेसे कितने ?

—यही पाँच-सात-दस ।

—इनके सिवा और उच्चवर्णोंके घर कितने हैं ?

—चार-पाँच ।

—और सब लोग खेतीका काम करते हैं ?

—जी हाँ ।

—पासके स्टेशनपर इस गाँवके कितने मुसाफिर उतरते होंगे ?

—एक-दो ।

—यह क्या बात है ? आपने तो अपनी अरजीमें लिखा था, कि बीस-पच्चीस आदमी उतरते हैं ।

—वे दिन अब नहीं रहे ।

—वे दिन क्यों नहीं रहे ?

—अब यहाँ मोटर चलने लगी है ।

—हाँ ? तो अब आपको नये स्टेशनकी जरूरत नहीं रही न ?

—बिल्कुल नहीं ।

पारसी सज्जन यह सुनकर यूरोपियनके पास पहुँचे और उससे कुछ बातचीत करके चले गये ।

उनके चले जानेपर जगन्नाथने प्रसन्न होकर कहा—लालाजी, आपने इन्हें बहुत अच्छा जवाब दिया है । आप यात्रियोंकी संख्या

बहुत बतलाते, तो यहां स्टेशन जरूर बन जाता और स्टेशन बन जाने पर हमारा मोटरोंका व्यापार नष्ट हो जाता।

सेठजीने कुछ आवेशमें आकर कहा—परन्तु मुझे अब न मोटरकी जरूरत है, न नये स्टेशन की। तुम आज ही दिल्ली जाकर तीनों लारियाँ बेच डालो।

जगन्नाथ अपने पिताकी यह विचित्र आज्ञा सुनकर स्तब्ध हो गया। कुछ देर बाद पूछा—इसका कारण ?

—कारण यह है, कि मैं संग्रामपुरकी बरबादी देखना नहीं चाहता।

—मोटरोंके साथ बरबादीका क्या सम्बन्ध है ?

तुम देखते नहीं हो, हमारे गाँवको देहलीका चेप लगता चला जा रहा है, रोग बढ़ते जा रहे हैं, लोगोंकी माली हालत खराब होती जा रही है, गरीबोंकी रोटी छिन रही है, लोगोंके मन शहरमें रहनेवालों की तरह कमजोर होते चले जा रहे हैं, यह सब तुम्हारी मोटरका प्रताप है।

—लालाजी हमने मोटरोंमें पूरे छः हजार खर्च किये हैं और अब पूरे तीन हजार भी मिलने मुश्किल हैं।

—तीन हजार मिलें या दो हजार, पर मुझे मोटरोंकी जरूरत नहीं रही। हमारा संग्रामपुर शहरसे दूर ही अच्छा। और देखो, इन गाड़ियोंका जितना रुपया मिले, वह सब यहाँके जरूरत-मंद लोगों को बिना ब्याजके उधार दे दिया जाय, यह ध्यान रखना।

—आप फिर बैलोंके कंधेपर जुआ रखाना चाहते हैं ?

बेटा, यही ठीक है, जिस दिन बैलोंके कंधेसे जुआ हट जायगा, उस दिन बैल और हम लोग भूखे मरने लगेंगे। ऐसी दया या ऐसे धर्मकी मुझे जरूरत नहीं है। चलो, दिल्लीकी तैयारी करो, देर करना ठीक नहीं।

यह सब काण्ड देख सुनकर अभयराम तांगेवाला अपने स्थानसे उठकर सेठजीके चरणोंमें लोटकर बोला—'सेठ जी सच्चा दया धर्म यही है।'

मेरे भरोसेपर

(१)

अरे लेखा घरमें है क्या ?

भीतरसे आवाज आई—कौन है ?

—अरे बाहर तो निकल, मैं हूँ...........

लेखाने बाहर निकल कर देखा, गाँवके बाबू मोतीराम बाहर खड़े हैं। बोला—आज मेरा धन्य भाग, जो आपके चरणोंसे झूंपड़ा पवित्र हुआ। कहिये, कोई काम है ?

—हाँ। कल तेरा ताँगा रहीमपुर ले जाना है। बोल कितना किराया लेगा ?

—आपसे क्या मैं ज्यादा ले लूंगा बाबू जी, जो सबसे लेता हूं वही आपसे लूंगा। यहाँसे कब चलना होगा ?

—नहीं किराया पहले तै हो जाना चाहिये। व्यापारमें सफाई अच्छी होती है, बादका झगड़ा किसी कामका नहीं।

अच्छी बात है, औरोंसे तो सवा दो रुपया लेता हूँ, पर आपसे दो रुपया लूंगा। आप खुश हैं न ?

— वाह भाई, तू भी 'जान मारे बानिया और पहचान मारे चोर' वाला मामला करता है। रहीमपुर यहाँसे पाँच कोस तो है भी नहीं और तू दो रुपये माँगता है ?

—बाबूजी, मेरा नाम लेखा चौहान है, दो रुपये तो मेरे रास्तेकी चौकीदारी ही हो जाते हैं, किराया रहा मुफ्तमें। और कोई होता तो तीन रुपयेसे कम न लेता।

—यह तो सब कुछ ठीक है, पर मैं डेढ़ रुपया नकद दूंगा। रात रहते ही यहाँसे चल पड़ेंगे।

– नहीं बाबूजी, दो रुपयेसे एक पाई भी कम नहीं हो सकता। वैसे आप कहें तो मुफ्त पहुँचा सकता हूँ।

—अच्छी बात है, दो रुपये ही सही। पर सुबह सोते ही न रह जाना।

—ऐसा कभी नहीं हो सकता। यहाँसे ढाई-तीन बजे चल पड़ेंगे, जिससे दिन निकलते ही रहीमपुर पहुँच जाँय।

लेखा उर्फ ठाकुर लेखराजसिंह मानिकपुरमें बैल-ताँगा चलाया करता था। वह जातिका राजपूत चौहान, शरीरसे खूब लम्बा-चौड़ा, हृष्ट-पुष्ट और मजबूत था। उसकी बहादुरीकी दँत-कथाएँ मानिकपुर में ही नहीं, आस-पासके तमाम गाँवोंमें फैली हुई थीं। भले आद-

मियोंके लिये भला और बदमाशोंका काल समझा जाता था। किसीको रात-विरात गाँवसे बाहर जाना होता, तो वह लेखाका ताँगा किरायेपर लेता था। लेखामें खास आदत यह थी, कि वह आनके लिये जान देनेसे पीछे न हटता था। इसीलिये गाँव वालोंका उसपर विश्वास हो गया था।

जिस समयकी घटना इस कहानीमें लिखी जा रही है, उस समय लेखाकी पहली स्त्री मर चुकी थी और करीब एक साल हुआ उसने दुबारा अपना घर बसाया था। पहली स्त्रीसे सिर्फ एक लड़की थी। ताँगेके किरायेसे जो आमदनी होती, उससे ही लेखा प्रसन्न रहता था। उन दिनों लड़की ब्याहने योग्य हो गयी थी, आमदनी बढ़नेका कोई उपाय न था, इसलिये उसने अपने ताँगेका किराया बढ़ा दिया था। किराया बढ़ जानेपर भी लोग उसीके ताँगेमें जाना पसन्द करते थे। इसका कारण यह था, कि लेखाके साथ रहनेसे वे अपनेको सुरक्षित समझते थे।

(२)

अभी दोका घंटा बजा ही था, कि जेलके चौकीदारोंकी—सी आवाजमें लेखाने आकर कहा—बाबू मोतीरामजी जाग रहे हैं क्या ?

मोतीरामने घरसे बाहर आकर कहा—भाई लेखा, तुम तो बहुत जल्दी आ गये।

—बाबूजी, इसी तरह काम चलता है। अभी आपको तैयार होनेमें भी तो आधा घण्टा लग जायगा। चलते-चलाते ढाई बज ही जायंगे।

लेखाकी वक्तकी पाबन्दीका यह एक नमूना था।

आधे घण्टेमें सब तैयार हो गये। मोतीरामके पास कुछ जेवर और रुपये भी थे, पर उन्हें कोई फिक्र न था। लेखा चारों ओर प्रसिद्ध था। उसके ताँगेको रोकनेकी किसीकी हिम्मत न होती थी।

रहीमपुर कहनेको तो पाँच कोस था, पर वे पुराने समयके कोस थे, जो घण्टों चलनेपर भी एक कोस पूरा न होता था। लेखा प्रातः-कालकी सुहावनी शीतल हवाके हलके झोंकेसे मस्त होकर राग अलापता चला जा रहा था। उसकी चपल आँखें आस-पास नजर डाल रही थीं। मोतीलाल ताँगेके झटकोंसे ऊँघने लगे थे।

अभी ये लोग करीब दो कोस ही गये होंगे, कि बीचका बीहड़ जंगल आ पहुँचा। यह स्थान खटकेका था। अक्सर इसी जगह वारदातें हुआ करती थीं। लेखाका ताँगा उस जङ्गलके सामने पहुँचा ही था, कि एक ओरसे आवाज आई—अरे इस ताँगेमें कौन है?

यह सुनकर लेखाने कहा—क्यों भाई, तुम्हें क्या काम है? और कुछ हिम्मत हो तो सामने आ जाओ।

—अरे तू तो बड़ा तीसमारखाँ मालूम होता है। अपनी खैर चाहता है, तो ताँगेसे उतरकर दूर खड़ा हो जा।

कहते हुए, ढांठा बांधे, हाथमें मजबूत लाठी लिये कई जवान सामने आ खड़े हुए। इस बातचीतसे मोतीरामकी ऊँघ भी उड़ चुकी थी और बेचारे भीतर ही भीतर बैठे काँप रहे थे।

लेखाने कहा—भाई, तुम लोग कोई नये आदमी मालूम होते हो,

तभी ऐसी बात कहते हो। मेरा नाम लेखा चौहान है, ताँगेकी ओर देखनेसे पहले खूनकी नदी बह जायगी।

दोनों डाकू यह सुनकर कुछ सहमे तो सही, पर वे उस प्रान्तके न थे, इसलिये अपनी ताकतका उन्हें पूरा भरोसा था। वे जवान थे और लेखा बूढा। इसके सिवा एककी दवा दो होते हैं। यह सोच, उनमेंसे एकने आगे बढ़कर कहा—देखो, हम तुझसे कुछ नहीं कहना चाहते, तू दूर खड़ा देखता रह। हमें तो सिर्फ ताँगेकी झड़ती लेनी है। यदि सवारी खुद ही अपना माल, गहने-पत्ते निकाल दे, तो हम उसे भी कुछ न कहेंगे।

—लेकिन ये मेरे ताँगेमें बैठे हैं, मेरे भरोसेपर बैठे हैं। इनकी ओर देखना मेरा सिर काटना है। भागो यहाँसे, कहाँ रास्ता रोके खड़े हो।

जिस समय उस भयानक जङ्गलमें, अन्धेरी रातके समय इस प्रकार जीवन-मृत्युका खेल हो रहा था, उस समय भी लेखा अपनी टेकपर अड़ा हुआ था। उसने डाकुओंसे साफ कह दिया, कि 'ये लोग मेरे भरोसेपर बैठे हैं, तुम इन्हें नहीं छू सकते।' यह सुनकर मोतीलालके हृदयमें अचानक ही प्रश्न उठा, कि यह ताँगे वाला हमारे सभ्य कहे जानेवाले समाजसे, मनुष्यताकी उपासना करनेमें कम है या अधिक? हम लोगोंके जीवनमें सिर्फ ऊपरी टीपटापके सिवा आनपर मर मिटनेकी यह भावना कहाँ दिखाई देती है?

मोतीलाल इस प्रकारके विचारोंमें तल्लीन थे, कि ताँगेसे बाहर लाठियोंकी मार शुरू हो गयी। लेखा लाठी चलाता जाता था और

'बाबूजी, आप जरा भी न घबराना' कहता जाता था। देखते ही देखते उसने दोनों डाकुओंको पश्त कर दिया। उसे भी कई लाठियाँ लग चुकी थीं, सिरसे खून बह रहा था। होलीके दिन खिलाड़ी लोग जैसे पागलसे हो उठते हैं, खूनको देखकर लेखा भी उसी प्रकार पागल हो उठा था। उसकी नस-नससे राजपूती गौरव झलक उठा। एक डाकूके गिरते ही दूसरेकी हिम्मत टूट गयी। पर वह भागते-भागते भी लेखाकी छातीमें एक चोट करता गया। छाती में लाठी लगते ही लेखाको चक्कर आ गया। बड़ी मुश्किलसे वह गिरते-गिरते बचा। फिर उस भागनेवालेका पीछा करना चाहा, लेकिन मोतीलालने रोक लिया। कहा,—बहादुर लोग भागनेवालेका पीछा नहीं किया करते। लेखा रुक गया। कुछ मिनट बाद उसका पागलपन दूर हुआ, तो कुछ बेहोशी-सी आ गयी और वह जमीन पर गिर पड़ा।

इस घटनाके बाद मोतीलालने रहीमपुर जाना मुलतबी कर दिया और लेखाको ताँगेसे डालकर घरकी ओर लौटे। रास्तेकी ठंडी हवासे लेखाका जी कुछ ठिकाने हुआ, पर छातीमें दर्द पूरा हो रहा था। मोतीलाल सभ्य थे, उन्होंने अपनी सभ्यता प्रदर्शित करते हुए कहा—लेखा तुमने यह झगड़ा क्यों मोल लिया। हजार पन्द्रहसौका माल क्या तुम्हारे शरीरसे ज्यादा कीमती था ?

—बाबूजी, आपकी यह भलमनसाहत है, जो आप ऐसी बात कह रहे हैं। आप मेरे ताँगेमें बैठकर आएं और मैं दूर खड़ा-खड़ा आपको लुट जाने दूं ? ऐसी दशामें मेरे जैसा विश्वासघाती और कौन हो सकता है ? यह आपके लुटनेका नहीं मेरी आनका सवाल था।

(३)

मोतीलाल जिस समाजमें पले थे, जिस समाजमें उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी, उसपर उन्हें बड़ा गर्व था। आज इस ताँगेवालेके मुंह से सचाई और आनकी इस नयी 'थ्यूरी' को सुनकर उन्हें जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही उनका सभ्यताका गर्व भी ढीला हो गया। वे उसकी प्रशंसा करने लगे।

गाँवमें पहुँचते ही ताँगा अस्पतालके सामने खड़ा किया गया। वहाँ लेखाकी मरहम-पट्टी की गयी।

पन्द्रह दिनमें लेखाके घाव तो अच्छे हो गये, पर छातीका दर्द न गया। एक दिन मोतीलाल उसे देखने गये तो वह बोला बाबूजी, आपने मेरी बहुत कुछ सहायता की है, परन्तु मुझे छातीके इस दर्दपर बिलकुल भरोसा नहीं है। न जाने यह मुझे कब लेकर चल दे, इसका कुछ भरोसा नहीं। मेरे जीवनमें अब कोई इच्छा बाकी नहीं है, सिर्फ लड़कीके हाथ पीले होने बाकी हैं।

मोतीलालने कहा—लड़के तो गाँवमें बहुत हैं।

—लेकिन मुझे ऐसे लड़केकी जरूरत है, जो मेरे ताँगेकी इज्जत रख सके।

ठीक है, मैं भी तलाश करता रहूँगा। लेखा आजकल तुम्हारा ताँगा बंद है, रुपये-पैसेकी जरूरत रहती होगी, इसलिये लो, ये रुपये रख लो।

—नहीं बाबूजी, मुझे इनकी जरूरत नहीं है। मैं आपके लिये नहीं, अपनी टेक, अपनी आन और अपने विश्वासके लिये लड़ा था।

—हाँ, यह तो ठीक ही है। हम लोग भी तो तुम्हारे ऊपर विश्वास होनेके कारण ही बेफिक्र थे। ये रुपये मैं उसके बदलेमें थोड़े ही दे रहा हूं, बल्कि इसलिये दे रहा हूं, कि तुम्हारे जैसे वीरकी कुछ सहायता कर अपना जीवन सार्थक करूं।

—नहीं बाबूजी मुझे रुपयोंकी जरूरत नहीं है। अब लड़कीके हाथ पीले हो जायं, तो गङ्गा नहाऊँ।

इसके बाद मोतीलालजीने आनके उस सच्चे पुजारीसे रुपये लेनेका विशेष आग्रह नहीं किया।

मोतीलालजीको शामके वक्त प्रति दिन स्टेशनपर जानेका शौक था। एक दिन उन्होंने देखा, कि एक हृष्ट-पुष्ट युवक स्टेशनपर घूम रहा है। उन्होंने युवकसे पूछा—भाई तुम कौन हो?

—राजपूत।

—कैसे राजपूत?

—चौहान।

—यहाँ कैसे आये हो?

—दस-बारह दिनसे मेरे भाईकी बदली इस स्टेशनपर हो गयी है, उसीके साथ आया हूँ।

—ठीक है। इस गाँवमें भी राजपूतोंके कई घर हैं, किसीको पहचानते हो?

—नहीं, मेरा भाई किसीको जानता हो, तो नहीं कह सकता।

युवक चला गया। मोतीलालने अपने मनमें सोचा, लड़का तो सजीला पट्ठा है, इसके साथ लेखाकी लड़कीका विवाह हो जाय, तो उसकी चिन्ता दूर हो सकती है।

मोतीलाल तो रोज ही स्टेशन जाया करते थे, इसलिये उस युवकके भाईसे मुलाकात हो गयी। मोतीलाल उसे एक दिन लेखाके पास ले आए। दोनोंका परिचय हुआ, तो दोनों बड़े प्रसन्न हुए। यह भी मालूम हुआ, कि वह युवक अभी तक कुंवारा है। मोतीलाल चलने लगे, तो लेखाने कहा—बाबूजी, किसी दिन उस लड़केको यहां ले आएं तो बड़ी मेहरबानी हो। आप अपनी सज्जनताके कारण ही मेरी सहायता कर रहे हैं। मैं उपकारका बदला कैसे चुका सकूंगा ?

आदमी इसका नाम है। मोतीलालने अपने मनमें सोचा, इसने हम चार आदमियोंकी रक्षा की, उसका तो इसे कोई खयाल है नहीं, पर मैं जो इसके पास घड़ी दो-घड़ी बैठ जाता हूं, उसके उपकारमें यह दबा जा रहा है !

लेखाकी हालत दिन-प्रति-दिन खराब होती जा रही थी। यह देखकर मोतीलाल एकदिन उस राजपूत युवकको साथ लेकर लेखाके पास पहुँचे। लेखा उस हट्टे-कट्टे जवानको देखकर खुश हो गया। पर लेखा मुंह देखकर तिलक लगानेवाला न था, इसलिये उसने पूछा—क्यों भाई तुम कुछ काम करते हो ?

युवकने कहा—नहीं।

—तो मेरा ताँगा जोत सकोगे ?

—जोत क्यों नहीं सकता ? पर भाईसे पूछना जरूरी है।

—लेकिन भैया, तांगा हाँकना हँसी-खेल नहीं है समझे ! यदि कभी तुम्हारी सवारियोंपर मुसीबत आ पड़ी, तो तुम क्या करोगे ?

—ऐसे समयपर मर मिटनेके सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता। राजपूतकी जिन्दगी, आनकी रक्षाके लिये ही होती है।

लेखा इस उत्तरसे बाग़-बाग़ होकर बोला—ठीक है।

लेखाको युवकके उत्तरसे इतनी प्रसन्नता हुई, कि वह अचानक खाटसे उठकर बैठ गया, सांस जोर-जोरसे चलने लगा। बुझता हुआ दीपक जैसे अचानक तेज हो जाता है, लेखाकी भी इस समय वही स्थिति हो रही थी। मोतीलाल, उसकी यह हालत देखकर घबड़ा उठे।

इसी समय लेखाने कहा—बाबूजी, अब आप जाने, आपका काम। मैं रहूं या न रहूं, इस लड़कीका ब्याह कर देना, बस। आपने मेरे ऊपर........बहुत............

कहते-कहते लेखाके प्राण पखेरू परमधामको उड़ गये।

इसके बाद मोतीलालजीने जोड़-तोड़ लगाकर लेखाकी लड़कीका विवाह उस युवकसे करा दिया। लड़का वहीं रहकर अपने ससुरकी तरह ताँगा चलाने लगा।

न्याय और अन्याय

(१)

उस दिन रविवार था। जबसे ईसाइयोंके ईश्वरने सृष्टि-निर्माणके कार्यसे थककर रविवारको आराम किया है, तबसे सभी ईसाई अपना कारोबार बन्दकर आमोद-प्रमोदमें यह दिन बिताने लगे हैं। भारतवर्ष ईसाइयोंका देश तो नहीं, पर ईसाइयों द्वारा शाशित अवश्य है, इसलिये यहाँके सरकारी आफिसोंमें भी रविवारके दिन काम-काज बन्द करनेकी प्रथा चली हुई है। मैंने सेक्रेटरियटके काग़जी गोरख-धन्धोंको अगले दिनके लिये छोड़कर भोजनके बाद, अपने भारी शरीरका बोझ, कमलनालकी-सी कोमल कलाई और चम्पेकी कली जैसी सुकुमार उङ्गलियोंकी सहायतासे बनी नीवारसे बुने हुए पलङ्गपर डाल दिया।

उस मच्छरप्रूफ मशहरी नामक ताबूतमें पड़ा मैं कितनी देरतक खुर्राटे भरता रहा, यह तो मालूम नहीं, पर अचानक किसीकी आवाजसे मेरी मीठी नींद, जागृतिके दल-दलमें फँसकर अपना अस्तित्व खो बैठी। बाहरसे कोई चिल्ला रहा था—बाबूजी, तार है।

मैं उठ बैठा। तारघर वालोंपर बड़ा क्रोध आया। ये कम्बख्त इतवारके दिन भी काम करनेसे बाज़ नहीं आते। शायद रेल, चुङ्गी

और तार ये तीन महकमे ऐसे हैं, जो ईसाइयोंके राज्यमें रहते हुए भी ईसाइयतकी भावनासे शून्य हैं !

अक्सर आफिसके तार, घरपर भी पहुंच जाया करते थे और उन्हें लेनेका मुझे अभ्यास भी पड़ा हुआ था, पर इस दो बजेके समय चिल-चिलाती हुई धूपमें, मीठी नींदसे महरूम हो जाना बहुत अखरा। लानत है, ऐसी सर्विसपर, सप्ताहमें एक दिन भी निश्चिन्त रहनेका अवकाश नहीं मिलता।

कालू तार ले आया, मैंने दस्तखत कर काग़ज लौटा दिया, तारके लिफाफेको देखते ही मैं समझ गया, कि यह आफिसका तार नहीं है।

मैं ऐसा बदनसीब हूँ, कि दुनियाँमें मेरा अपना कहा जानेवाला कोई नहीं है। मुझे ब्रह्मकी तरह 'एक मेवाद्वितीयम्' कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक बहन थी, पिछले साल वह भी नाता तोड़ गयी। विवाह किया था, पर पत्नी भी आजसे पहले बहुत दिन इस संसारका कारोबार समेटकर अनन्तकी ओर चली गयी है। तब से मैंने विवाहके बंधनोंमें पड़ना उचित नहीं समझा।

लिफाका खोला। तार रांचीसे आया था। मनोहरने लिखा था, मैं सख्त बीमार हूँ, जल्दी आओ।

मनोहर मेरा घनिष्ट मित्र है। यद्यपि वह मुझसे पाँच-सात साल छोटा है, परन्तु इससे मित्रतामें कभी बाधा नहीं पहुंची।

यह प्रिय दर्शन किशोर फर्स्ट-इयरमें पढ़नेके लिये कालेजमें दाखिल हुआ, तो उसकी सरलतासे वहाँके छात्र ही नहीं, प्रोफेसर लोग भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सके। और सबसे अधिक

घनिष्ठता हुई मेरे साथ। मुझे यह अभीतक पूर्ण विश्वास है, कि मनोहर अपने सब मित्रोंसे अधिक मुझसे प्रेम करता है।

मनोहर धनी माँ–बापका बेटा है। उसके पिताने उसके लिये पृथक मकानकी व्यवस्था की थी। उस मकानमें भोजन बनानेवाला एक रसोइया था, एक नौकर था और सबसे विशेष बात यह थी, कि उसके पिताके एक मित्र भी मनोहरके अभिभावके रूपमें रहते थे।

बी० ए० के बाद आनर्सके साथ एम० ए० पास करते ही मुझे एक बहुत अच्छी जगह मिल गयी, इसीलिये मुझे कालेज छोड़नेके बाद भी कई वर्षतक प्रयागमें रहना पड़ा। उन दिनों भी अक्सर मनोहर मिलता रहता था। एक बार सुना, उसके पिताने एक शिक्षिता और सुन्दरी कन्याके साथ उसका विवाह ठीक किया हुआ है, परन्तु मनोहरकी प्रतिज्ञा है कि मैं विवाह करूँगा ही नहीं।

इसी समय मेरी बदली हो गयी। भारत सरकारमें किसी विभागका हेड-क्लर्क होकर मैं देहली चला आया।

कुछ दिन बाद सुना, कि मनोहर सम्मानके साथ एम० ए० पास कर आई० सी० एस० की तैयारी कर रहा है, पर उसके ऊपर एक मुसीबत भी आई हुई है। क्योंकि अब उसके पिता कोई एतराज न सुनकर विवाह करनेकी तैयारी कर रहे हैं। सम्भव है, इस बार अपने पिताके सामने उसे झुक जाना पड़े।

इसके बाद दो महीने तक उसका कोई पत्र नहीं आया। मैंने समझा, उसका विवाह हो गया है, परन्तु मेरे पास उनका निमन्त्रण-पत्र नहीं पहुँचा, यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

एक दिन मैंने आफिससे लौटकर देखा, कि मनोहर मेरे कमरेमें बैठा सिगारका श्राद्ध कर रहा है। मैंने चकित होकर पूछा—अरे तुम अचानक कहाँसे आ टपके ?

मालूम हुआ उसके पिता अगले शुक्रवारके दिन, जबरन उसका विवाह करना चाहते थे, इसलिये वह भाग आया है।

मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा—तुम्हारा यह काम उचित नहीं हुआ मनोहर। पिताकी आज्ञा उल्लंघन करना किसी भी शिक्षित युवकके लिये कलङ्ककी बात है।

उसने उत्तेजित होकर कहा—पिताजी यदि अन्याय कर रहे हों, तो क्या उसे भी शिक्षित होनेके दण्डस्वरूप स्वीकार कर लेना चाहिये ? यदि ऐसी बात है, तो फिर शिक्षित होनेसे क्या लाभ हुआ ?

—वे क्या अन्याय कर रहे हैं।

चाहे जो कुछ हो, यदि सच्चे हृदयसे मुझे यह विश्वास हो जाय, कि वे अन्याय कर रहे हैं, तब भी क्या उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये ?

उसकी बातोंसे मुझे मालूम हुआ, कि उसके हृदयमें कोई ऐसी बात छिपी है, जिसे वह मुझसे भी छिपा रहा है। आजतक उसने अपने घरकी कोई बात मुझसे नहीं छिपाई थी, कभी इस तरहका पर-हेज नहीं किया था, पर यह कौनसी बात है जो मुझसे भी कहना उचित नहीं समझता।

खैर, उसे समझा-बुझाकर घर भेज दिया। इस घटनासे एक सप्ताह बाद उसका विवाहका निमन्त्रण मिला।

ये सब तीन वर्ष पहलेकी बातें हैं, उस दिनके बाद मनोहरसे फिर मिलना नहीं हुआ। कुछ दिन तक तो उसके काफी पत्र आते रहे, पर आज-कल उनकी संख्या बहुत कम और संक्षिप्त हो उठी है। पहले जैसे बड़े और लम्बे पत्र नहीं आते।

मनोहरके विवाहसे थोड़े दिन बाद उसके पत्रसे यह भी मालूम हुआ था, कि वह आई० सी० एस० में पास हो गया है और उसकी नियुक्ति राँचीमें फर्स्टक्लास मेजिस्ट्रेटके पदपर हो गयी है।

तार पढ़कर मैं समझ गया, कि मनोहर सच-मुच सख्त बीमार है, नहीं, तो वह इस प्रकार तार न भेजता। सम्भव है, मुझे देखनेके लिये उसका मन बेचैन हो रहा हो।

अगले दिन छुट्टी लेकर, उसी रातको राँचीके लिये चल पड़ा।

(२)

मेरी गाड़ी राँचीके स्टेशनपर जाकर खड़ी हुई, तो रातको दो बजे थे। देहलीसे चलते समय तार दे दिया था कि रांचीके स्टेशन पर तुम्हारा कोई आदमी जरूर मिले, वरना उस अपरिचत स्थानपर मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। गाड़ी रुकते ही दो आदमी लालटैन हाथमें लिये हरएक खिड़कियोंको देखते हुए मेरे पास पहुँचे। मैंने उनसे पूछा—मि० मनोहरलाल मेजिस्ट्रेट कहां रहते हैं, बतला सकते हो ?

उनमेंसे एक आदमीने सलाम करके कहा—हम लोग वहींसे आपको लेने आए हैं। आप दिल्लीसे आ रहे हैं न ?

—हाँ।

ऊंचे-नीचे और घुमावदार पहाड़ी रास्तेको तैकर कुछ देर बाद हमलोग एक बङ्गलेके सामने पहुँचे। दरवाजा भीतरसे बन्द था। आवाज देते ही एक स्त्रीने आकर खोल दिया।

नौकरके हाथकी लालटैनका प्रकाश उस तरुणीके मुंहपर पड़ रहा था। इस श्यामवर्ण सुन्दरीको देखकर मुझे कुछ विस्मय हुआ। सोचा, क्या यही मनोहरकी स्त्री है ? मैंने तो सुना था, कि इसकी स्त्री अनिन्द्य सुन्दरी है, पर इसे तो वैसी सुन्दरी नहीं कहा जा सकता।

तरुणीने मेरे साथ आए हुए नौकरोंमेंसे एकसे कहा - मन्ना, तुम पहले स्टोब जलाकर चायका पानी चढ़ादो और लेखासे कहो, पासके कमरेमें चारपाई बिछाकर उसपर बिस्तर लगा दे।

फिर मेरी ओर देख और दोनों हाथ जोड़कर बोली—इस विपत्तिके समय आपके आजानेसे मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है, यह शब्दोंसे नहीं बतलाया जा सकता। आप कृपाकर कुछ देर यहां बैठें, थोड़ा विश्रामकर अपने मित्रसे मिलें।

मैंने चिन्तित भावसे पूछा—पहले यह बतलाइये, उसकी हालत कैसी है ?

तरुणीने कहा—डाक्टर कहते हैं, बच तो जायंगे, लेकिन.......

कहते-कहते अचानक रुक गयी और फौरन ही पासके कमरेमें चली गयी। कुछ देर बाद लौटकर बोली—वे इस समय जाग रहे हैं या सो रहे हैं, कुछ पता नहीं चला। आप पहले एक प्याला चाय पी लीजिये, फिर उनसे मिलें।

इसी समय नौकर चाय दे गया। मेरी इच्छा तो चाय पीनेकी नहीं थी, पर मिसेस मनोहरके विशेष आग्रहसे पीनी ही पड़ी। इसके बाद मुझे वे पासके कमरेमें ले गयीं। मनोहरलाल पलङ्गपर पड़ा था। उसके सिरहानेकी ओर एक छोटी-सी तिपाईपर रक्खी हुई लालटैन अपने धीमे प्रकाशसे कमरेमें, उदासीका भाव फैला रही थी। मिसेस-मनोहरके लालटेनका पेंच घुमाते ही तमाम कमरा उज्ज्वल आलोकसे प्रकाशित हो उठा।

उस उज्ज्वल प्रकाशमें मैंने मनोहरको अच्छी तरह देखा। उसके सारे शरीरपर चेचककी फुन्सियाँ उभरी हुई थीं। शरीर सूखकर काँटा हो गया था, अचानक देखकर पहचान लेना कठिन था।

मैं उसकी यह दशा देखकर काँप उठा और मिसेस मनोहरकी ओर देखा। उन्होंने रोशनी कम करते हुए कहा—चलिये, आपको उस कमरेमें पहुँचा आऊँ। नौकर शायद सो गये होंगे। कल सुबह आप इनसे बात-चीत करें।

इसी कमरेमें एक तरफ दूसरी खाट बिछी देखकर, बाहर निकलते हुए मैंने पूछा—आप कहाँ सोती हैं?

—मुझे तो रोगीके कमरेमें ही रहना पड़ता है। मैंने कहा—आप दिन-रात इसी कमरेमें रहती हैं, मिसेस मनोहर ? चेचकके रोगीके पास........

उन्होंने मेरी बात काटकर कहा—मुझे कुछ नहीं हो सकता दिवाकर बाबू और रोगीके पास भी तो कोई रह सकता है, पर चेचकके रोगीके पास रहनेकी किसीको हिम्मत नहीं होती। ऐसी दशामें, मैं भी कन्नी काट गयी, तो रोगीकी मृत्यु हो जाना असम्भव नहीं है। उस दिन इन्हें चौबीस घण्टेमें एक बूंद पानी भी........

कहते हुए तरुणीका गला भर आया, तो वे चुप हो गयीं। इस समय तक मैं दूसरे कमरेमें चारपाईके पास पहुँच चुका था। वे मुझे नमस्कार कर वहाँसे चली गयीं।

मैं विस्तरेपर पड़ तो रहा, पर नींद नहीं आई। मनोहरकी स्त्रीको देखकर मुझे आश्चर्य-सा हो रहा था। मैंने सोच रखा था, उसकी स्त्री शिक्षिता और आधुनिक सभ्यताकी उपासिका अपटूडेट महिला होगी, पर मिसेस मनोहरके साथ मेरी कल्पना मूर्तिका जरा भी सामञ्जस्य नहीं बैठा। इनको बदसूरत तो नहीं कहा जा सकता, पर सुन्दरी भी नहीं। जिसे रूपका अभिमान कहा जा सकता है, वह इसमें बिलकुल नहीं था। भारतवासियोंके नीन्यानवे फी-सदी घरोंमें जैसी साधारण स्त्रियाँ देखनेमें आती हैं, यह भी वैसी ही है। इसमें जरा भी विदेशीयता नहीं दीखती। शरीरपर चौड़ी लाल-किनारीकी साड़ी, साधारण कपड़ेका साफ़-सुथरा जम्पर, हाथोंमें तीन-चार चूड़ियाँ और माथेपर रोलीकी बेंदी सोभा पा रही थी।

मैंने सोचा, मनोहर सच-मुच सुखी है। ऐसी स्त्रीकी सेवा जिसे प्राप्त होती है, क्या वह भाग्यवान् नहीं है?

(३)

अगले दिन सुबह उठते ही मैं घूमने चल दिया। चारों ओर छोटे-छोटे पहाड़ोंकी श्रेणियों, उनपर जमे हुए वृक्षों और पौधोंने वहाँके प्राकृतिक दृश्यमें चार चाँद लगा रक्खे थे। कहीं समतल और कहीं ऊँची-नीची पगडंडियाँ, साँपकी तरह बल खाती हुई चली गयी थीं। पहाड़ोंकी श्रेणियोंसे नीचे, समतल जमीनपर शहर बसा हुआ था। कुछ ऊँचाईपर अफसरोंके बङ्गले, रेलवेका आफिस, कचहरियाँ, पुलिस थाना और म्यूनिसिपल आफिस बने थे। बीच-बीचमें नीम, अशोक और आमके पेड़ अपनी सघनतासे सुरुचिपूर्ण बनावटवाले बंगलोंकी शोभामें वृद्धि कर रहे थे।

मैं यह सब देखकर वापस लौटा, तो आठ बज चुके थे। अर-दलीसे मालूम हुआ, मिसेस मनोहर बहुत देरतक मेरी प्रतीक्षा कर रोगीके पास चली गयी हैं।

नौकर जलपानके लिये चाय और बिस्कुट दे गया। नौकर पश्चिमी युक्त प्रदेशका रहनेवाला था। बातों-ही-बातोंमें उससे परि-चय हो गया। मालूम हुआ, वह मनोहरके गाँवका ही रहनेवाला है। बचपनसे इनके यहाँ रहता है। सालभर हुआ मनोहरकी मा, मरते समय अपने पुत्रकी देख-रेखका भार उसके हाथमें सौंप गयी हैं। तबसे वह इन्हींके पास है।

उसने आँसू पोंछते हुए कहा—इस बार छोटे बाबूको जैसी भयानक बीमारी हुई थी, उसको देखकर इनका बचना ही मुश्किल था। अब डाक्टर लोग कहते हैं, कि जीवनका तो खतरा नहीं रहा, पर सम्भव है आँखें दोनों चली जायँ। क्या बतलाऊँ साहब, एक हफ्ते तक तो ये ऐसे बेहोश पड़े रहे, कि हाँ-हूँ भी न करते थे, आवाज देनेपर भी इन्हें कुछ पता न चलता था। पहले दिन डाक्टर साहबने जैसे ही कहा, कि चेचक होनेवाला है, तो बहूजी उसी समय अपने भाईके साथ घर चली गयीं। यह देखकर नौकर चाकर भी भाग गये, उस वक्त अकेला मैं ही इनके पास था।

मैंने विस्मित होकर पूछा—बहूजी चली गयीं? कौनसी बहूजी?

मन्नाने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—बहूजीसे मेरा मतलब है, छोटे बाबू (मनोहर) की स्त्री से।

मैं कुछ देरतक अवाक् भावसे उसकी ओर देखता रहा। वह क्या कह रहा है, समझमें नहीं आया। थोड़ी देर बाद पूछा – तो यह स्त्री कौन है?

उसने वेदना मिश्रित हँसी-हँसकर कहा—इसका इतिहास बहुत बड़ा है, धीरे-धीरे आपको सब मालूम हो जायगा। जब बहूजी चली गयीं; तो मैंने आपके और इनके पास तार भेजा था, आप कल आए हैं और ये चार दिन पहले आ गयी थीं।

कुछ देर रुक कर आवेशपूर्ण कण्ठसे बोला—बाबूजी मेरी इतनी बड़ी उम्र हो गयी, अबतक हजारों स्त्रियाँ देखी हैं, पर इसके जैसी एक भी देखनेमें नहीं आई। रोगीकी सेवामें लगी रहनेसे बेचारी

लीलाको न खाने-नहानेकी फ़ुरसत मिलती है, न सोने की। मैंने सैकड़ों बार देखा है, कि यह रातभर रोगीके पास बैठी पंखेसे धीरे-धीरे हवा करती रहती है। इसे न अपने जीवनका भय है, न घृणा है।........

वह और भी न जाने क्या-क्या कहता, पर इसी समय भीतरसे बड़े कोमल स्वरमें आवाज आई—मन्ना !

वह मेरे पाससे उठकर चला गया। यह स्त्री कौन है, कुछ समझ में नहीं आया, पर मन्नाकी बातोंसे इतना मालूम हो गया कि मनोहरके परिवारसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी यह इतनी तपस्या, इतना त्याग कर रही है ?

अचानक मेरे दिलमें एक खयाल पैदा हुआ। मनोहर कहीं इसीके कारण तो विवाहसे इन्कार नहीं कर रहा था ? सम्भव है यही बात हो, तभी उसने मुझसे कुछ स्पष्ट नहीं कहा था।

कुछ देर बाद मैं मनोहरको देखने चला। उसके कमरेके दरवाजेका परदा हटाते ही मेरे नेत्रोंके सामने जो दृश्य आया, उसे देखकर मेरा हृदय पसीज उठा। किशोरी, मनोहरका सिर अपनी गोदमें लिये मेजर ग्लासमेंसे, छोटी-सी चम्मचके द्वारा बेदानेका रस बड़ी सावधानीके साथ उसके मुंहमें डाल रही थी। तरुणीके दोनों नेत्र आँसुओंसे भरे हुए थे।

मुझे देखते ही वह घबड़ा-सी उठी और सबसे पहले साड़ीके आँचलसे आँखें पोंछ डालीं। मैंने उसको मनोहरका सिर तकियेपर

रखनेका उपक्रम करते हुए देखकर कहा—आप शाँतिसे पथ्य देती रहें, मैं तो अभी बाहर जा रहा हूँ।

. किशोरीने मीठी आवाज़से कहा—नहीं, आप जाते क्यों हैं, अपने मित्रसे मिल लीजिये। अजी सुनते हो, तुम्हारे दिवाकर भैय्या तुमसे मिलने आए हैं, इनसे थोड़ी देर बात करलो।

यह कहते हुए उसके नेत्रोंसे फिर आँसू प्रवाहित होने लगे। अवरुद्ध कंठसे बोली—मैं तो दिन-रात भगवानसे यह प्रार्थना करती हूं, कि मेरी आँखोंकी ज्योति लेकर इन्हें दे दो। मैं अँधी हो गयी, तो मुझे इतना दुःख न होगा दिवाकर भैय्या, पर इनकी........

मैंने उन्हें रोककर कहा—यदि ऐसी घटनाएँ सम्भव हुआ करतीं, तो संसारमें किसीको रोनेकी जरूरत न पड़ती। देखिये, मिसेस....

यह कहते ही मैं अचानक रुक गया। उसने कुछ मुस्कराकर कहा—कृपाकर मेरा नाम लेकर पुकारा करें। मेरा नाम लीला है। मैं भी आपको भैय्या कहकर बुलाया करूँगी, इससे आप तो असन्तुष्ट न होंगे?

मैंने प्रसन्न होकर कहा—यह असन्तुष्टताकी नहीं, प्रसन्नताकी बात है। मेरे तो न भाई है और न बहन है, आजसे तुम मेरी छोटी बहन हो गयी।

लीलाका मुंह प्रसन्नताकी आभासे उज्ज्वल हो उठा।

मनोहरकी आँखें ध्यानसे देखनेपर मालूम हुआ कि सच-मुच ही उनमें कुछ नहीं रक्खा है। हृदयमें बड़ा कष्ट हुआ। इतना बड़ा जीवन आँखोंके बिना कैसे बीत सकेगा?

मनोहर भी अपनी अवस्थाको अनुभव कर रहा था। उसने मेरा हाथ पकड़कर अवरुद्ध कँठसे कहा—मैं अन्धा होकर कैसे जी सकूंगा दिवाकर भैय्या, इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा है।

मनोहरके नेत्रोंसे आँसुओंकी वर्षा हो रही थी। मैं उसे कैसे धीरज दूं, किन शब्दोंमें सान्त्वना दूं, यह समझमें ही नहीं आया। कुछ देर बाद स्वस्थ होकर कहा—पता नहीं भगवान् क्या करना चाहते हैं? पर तुम अभीसे इतने निराश क्यों हुए जा रहे हो? अनेक बार ऐसा भी देखा गया है, कि अन्धोंकी आँखोंमें भी भगवान् ज्योतिका प्रवेश कर देते हैं। उनकी माया बड़ी विचित्र है।

मनोहरने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—जिनका भाग्य अच्छा है, उन्हें ही यह नियामत हासिल होती है, मैं तो बड़ा मन्दभाग्य हूँ दिवाकर भैया, मुझे कुछ आशा नहीं है।

कुछ देर चुप रहकर उसने फिर कहा—मेरे सौभाग्यसे लीला आ गयी है, मन्ना यहाँ था ही, तो दो घूंट यहाँ पानी भी मिल गया, नहीं घरसे इतनी दूर, इस परदेशमें मेरा कौन बैठा था? तुमने शायद सुना होगा, कि मेरे शरीरमें चेचक निकलनेकी सम्भावनाका समाचार सुनते ही मेरी स्त्री अपने भाईके पास चली गयी है।

मैं चुप रहा। मनोहरने फिर कहा—तुम यहाँसे कब जाना चाहते हो दिवाकर भैया?

—पन्द्रह दिनकी छुट्टी लेकर आया हूं। तुम्हें कुछ आराम होने लगेगा, तभी मैं जाऊँगा।

मनोहर चुप रहा।

धीरे-धीरे मनोहरका रोग दूर हो रहा था। एक दिन सुना लीला ने उसकी सम्मतिसे उसकी स्त्रीके पास एक पत्र भेजा है, मेरे मनमें कुछ प्रसन्नता हुई, कि मैं अब मनोहरकी स्त्रीको देख सकूंगा।

(४)

मनोहरकी स्त्री मेरी अपने भाई एस०डी०ओ० मि० वर्माके साथ अगले दिन आ पहुँची। मैंने दूरसे ही उसे देखा, वह अहंकारकी प्रतिमूर्ति और सिरसे पैरतक शुद्ध विदेशी भावोंसे परिपूर्ण थी। उसके आनेपर लीलाने बाहर निकल जब उसे प्रणाम किया, तो सभ्यताकी दृष्टिसे उसने प्रणामका उत्तर तो दे दिया, परन्तु उसके चेहरेका भाव ऐसा बना हुआ था, मानों लीलाने उसको प्रणाम करके अत्यन्त धृष्टता की है। मैं यह देखकर बाहर निकल आया।

मि० वर्मा कुछ दिनतक मेरे सहपाठी रहे थे। उस बहुत दिन पहलेके किशोर रमेशने मुझे देखते ही पहचान लिया। उसने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ मेरा हाथ पकड़कर कहा—तुम अचानक कहाँसे आ टपके ?

मैंने गम्भीर भावसे उत्तर दिया—श्रीमती मनोहरके जानेके दो दिन बाद यहाँ पहुँच गया था। और आकर जो कुछ देखा········

मि० वर्माने कहा—क्या किया जाय भाई, ऐसे रोगियोंके पास कहीं रहा जा सकता है ? यह तो रोग ही ऐसा है, जिसके नामसे ही लोग दूर भागते हैं।

मेरी इच्छा तो हुई, कि इस बहनके भक्तको अच्छी तरह फटकार दूं, पर कुछ सोचकर रुक गया। दूसरी ओर मुंह करके केवल इतना कहा—यह तो ठीक है।

मि० वर्माने कहा—तुम जबसे आए हो, रोगीकी कैसी अवस्था देख रहे हो ?

मैंने कहा—जब तुम खुद यहाँ आ पहुँचे हो, तो सब बातें आँखसे देखलो। आओ चलें।

मि० वर्माने कुछ संकुचित होते हुए कहा—मेरी, तुम तबतक बाहर ही रहो, मैं जाकर देख आता हूँ।

मेरा हृदय यह सुनकर उनकी ओरसे नफरतसे भर गया। मैंने लीलाकी ओर देखकर कहा—श्रीमती मनोहर बहुत थक गयी प्रतीत होती हैं लीला, इनके आराम करनेकी व्यवस्था कर दो। कुछ देर बाद ये अपने पतिसे मिलने जायँगी।

लीला मेरीको साथ लेकर चली गयी।

मि० वर्मा पासकी कुरसीपर बैठकर बोले—सुना है, हालत अच्छी नहीं है, इतने कमज़ोर हो गये हैं। इसके सिवा यह भी मालूम हुआ है, कि दोनों आँखें भी········

मैंने उसका वाक्य पूरा करते हुए कहा—सदाके लिये नष्ट हो जायँगी।

मि० वर्माका चेहरा पीला पड़ गया। बोले—तब तो हम लोगोंने ठीक ही सुना था।

मैं सिर हिलाकर चुप हो गया।

मि० वर्माने चिन्तित भावसे कहा—मुझे तो इतने दिनसे मेरीका फिक्र सता रहा है। तुमसे क्या कहूं दिवाकर भाई, उसकी प्रकृति इतनी कोमल है, कि वह चेचकका नाम तक नहीं सुनना चाहती। उस दिन यहाँसे जाते ही बार-बार फिट आने लगे। आज जब हम लोग चलने लगे, तो डाक्टर इसे साथ लानेको मना कर रहे थे। लेकिन कुछ भी हो यह स्त्री है—पतिको भयानक बीमारीमें फँसा देख गयी थी, रो-रोकर बुरा हाल कर दिया, तब मजबूर होकर साथ लाया हूँ। मैंने समझा था, मनोहरकी तबीयत ठीक हो गयी होगी, पर यहाँ आकर जो कुछ सुना है, उसको देखते हुए मेरीके हृदयपर कैसा भयानक आघात लगेगा, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

रमेश एक साँस छोड़ और गालपर दायाँ हाथ रखकर सोचने लगा।

मैंने कहा—ऐसी दशामें इसे साथ न लाना ही अच्छा होता।

रमेशने फीकी हँसी-हँसकर कहा—मेरीको साथमें न लाना समाजकी दृष्टिसे क्या उचित प्रतीत होता दिवाकर? मैंने सोचा, अचानक कोई गड़-बड़ हो गयी, तो काला मुंह न हो जाय, इसीलिये ले आया हूँ। अच्छा, यह तो बतलाओ, यह स्त्री कौन है?

रमेश अपनी बहनको साथ क्यों लाया है, इसका कारण मैं पहले ही समझ गया था। कहा—मैंने तो केवल इसका लीला नाम सुना है, रोगीकी दिन-रात सेवा करते देखा है, पर यह है कौन, यह नहीं जानता।

मि० वर्मा सिर हिलाने लगे। उनके मुंहपर व्यङ्गयुक्त हँसीकी एक रेखा स्पष्ट रूपसे प्रकट हो गयी, जिसे देखकर मैं सिरसे पैरतक जल उठा।

निर्जीवके समान मनोहर अपने पलङ्गपर पड़ा हुआ था, मैंने मशहरीका पल्ला उठाया, मि० वर्मा अचानक चिल्ला उठे—ओ माई गाड, मैं तो यहाँसे बाहर जाता हूँ।

दूसरे ही क्षण मैंने घूमकर देखा तो वे कमरा खालीकर चुके थे। मनोहरने धीमी आवाजसे पूछा—कौन है दिवाकर ?

—तुम्हारे साले मि० वर्मा।

मनोहरने पूछा—मेरी भी आई है ?

—आई है।

—वह कहाँ है ?

मेरा हृदय फटा जा रहा था। कहा—मैं अभी बुलाए लाता हूँ।

मैं मेरीके पास पहुँचा, तो देखा, उसे फिटका दौरा हो रहा है। लीलासे सुना, पतिके रोगकी अवस्था सुनकर उसकी यही दशा हुई है।

जब उसे होश हुआ, तो मैंने कहा—श्रीमती, मनोहर एक बार आपसे मिलना चाहता है, आप मिलेंगी ?

मेरी रूमाल आँखोंपर लगा रोते-रोते हिचकी लेती हुई अस्फुट स्वरसे बोली—नहीं-नहीं, मैं उन्हें नहीं देख सकूंगी। मि० दिवाकर, मैं उनका इस समयका चेहरा और मुंह नहीं देख सकूंगी, यदि देखा तो निश्चय मेरी मृत्यु हो जायगी। मैं उनके पास नहीं जा सकूंगी, दिवाकर बाबू·······

दो-तीन वार काँपकर मेरी फिर मूर्च्छित हो गयी।

उसकी यह दशा देखकर मैंने रमेशसे कहा—जब यह अपने पतिको देख नहीं सकेंगी, तो इन्हें बहुत देरतक यहाँ रखकर मार डालना उचित नहीं है। आपकी क्या राय है ?

रमेशने कुछ सोचकर कहा—नहीं, मैं इन्हें पहली ही गाड़ीसे अपने साथ लिये जाता हूँ।

करीब आध घण्टा बाद अपनी मुर्च्छित बहनको लेकर रमेश वहाँसे चला गया। उन्हें गाड़ी पर बैठाकर मैं वापस आया, तो देखा, लीला बरामदेमें चुपचाप खड़ी हुई है।

मैंने पूछा—उन लोगोंके चले जानेकी बात क्या मनोहरको मालूम हो गयी है ?

लीलाने सिर हिलाकर बतलाया, हाँ मालूम हो गयी है। फिर कुछ देर चुप रहकर बोली—यह सुनकर थोड़ा-सा मुस्करा देनेके सिवा और कुछ नहीं कहा।

(५)

जब मेरी छुट्टी समाप्त होनेको आई, तब मनोहर काफी अच्छा हो चला था। मैं उससे विदा लेने पहुँचा, तो उसने कुछ देर चुप रह और निःश्वास छोड़कर कहा—अच्छा जाओ, मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता। बीच-बीचमें मेरी खबर लेते रहना, भूल नहीं जाना। मैं तो इस जीवनकी सर्वोत्तम वस्तु खो चुका हूँ। अब सिर्फ........

कहते-कहते उसका गला रुक गया।

मैंने उमड़ते हुए आँसुओंको बड़ी कठिनाईसे रोककर कहा—इतना हताश होनेकी आवश्यकता नहीं मनोहर, डाक्टरोंने अभी एकदम जवाब नहीं दिया है। उनका कहना है, सम्भव है आँखोंकी ज्योति फिर आ जाय। मैं भी दिन-रात भगवान्से यही प्रार्थना करता रहूँगा, कि तुम्हारी आँखें ठीक हो जायँ।

उसने बहुत धीरेसे कहा—वरना मरना जीना बराबर हो जायगा, दिवाकर भैया।

मैंने कहा—हाँ, इसमें क्या शक है ? देखो, मैं तुमसे एक बात कहे जाता हूँ, तुम थोड़ा चलने फिरने लगो, तो अपने घर चले जाना। यहाँ परदेशमें पडे रहना ठीक नहीं है।

उनसे विदा होकर गाड़ीपर सवार हो गया। चलते समय लीला मुझे प्रणाम करते हुए अचानक रो पड़ी। उसके सिरपर हाथ फेर कर आशीर्वाद देते हुए मेरी आँखोंमें भी पानी आ गया। मैंने अवरुद्ध स्वरसे कहा—बहन, अभीतक मुझे तुम्हारा परिचय नहीं मिला ?

उसने कहा—मेरा परिचय भी किसी दिन मिल ही जायगा भैया। पता नहीं, उस दिन तुम मुझसे घृणा करोगे या प्रेम ! मैं पत्र द्वारा तुम्हें सब बातें लिख दूंगी, इस समय कहनेमें सङ्कोच होता है।

मैंने कहा—तुम चाहे जैसी भी हो बहन, मैं तुमसे हमेशा प्रेम करता रहूंगा।

भागलपुरका स्टेशन आते ही मैं गाड़ीसे उतर पड़ा,। वहाँ मेरे मित्र रमेश वर्मा और मेरीके अतिरिक्त मेरे एक और भी मित्र रहते थे। उनके घर सामान रखकर रमेशसे मिलनेके लिये चल पड़ा। मैं मि० वर्माके घर जिस समय पहुँचा, तब शाम हो चुकी थी। ऐसा प्रतीत हुआ, कि इनके यहाँ कोई विशेष उत्सव हो रहा है। सामने के हालसे किसी स्त्रीके मधुर् कण्ठसे निकला हुआ ललित स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। बहुत लोग इधर-उधर घूम-फिर रहे थे। निश्चय हो गया कोई न कोई समारोह अवश्य है।

रमेशसे मुलाकात हुई, तो उसने मुझे अत्यन्त आदरसे बैठाया। मैंने पूछा—आज क्या मामला है ?

रमेशने लज्जित भावसे कहा—मेरीके विशेष अनुरोधसे आज यह साधारण आयोजन किया गया है। तुम तो जानते ही हो भाई, कि उसका हृदय एक दम टूट गया है, डाक्टरोंने उसे प्रसन्न रखनेकी हिदायत की है। मेरी स्त्रीने उसे अपने हाथों पाला है। मि० मनोहरका हाल सुनकर उन्हें इतना कष्ट हुआ है, कि तबसे आजतक चारपाई नहीं छोड़ी, बराबर बीमार रहती हैं। क्या करूँ भाई, मेरीको प्रसन्न रखके लिये ही यह सब कर रहा हूं। चिन्ता है, कहीं वह भी चारपाई न पकड़ ले, इसलिये—

पासके कमरेसे मेरीका कण्ठस्वर आ रहा था, वह पियानोंपर कोई गीत गा रही थी। गीत समाप्त होते ही किसी पुरुषके कंठकी आवाज आई—वाह, मिसेज़, आपका गला बड़ा लोचदार है। लंदनमें रहते हुए एकबार मैंने ऐसा ही गाना सुना था। मैं पहले सोचा

करता था, कि शायद हमारे देशकी महिलाएँ ऐसा भावपूर्ण गीत, ऐसे सुललित स्वरसे नहीं गा सकतीं, परन्तु आज आपने मेरे इस विश्वास को नष्ट कर दिया है।

मैं इससे अधिक नहीं सह सका। जिस स्त्रीका पति जीवन-मरणके झूलेमें झूल रहा हो—भविष्य अन्धकारमय और वर्त्तमान यन्त्रणादायक हो, पतिके सुख-दुःखकी समभागिनी वह पत्नी, इस प्रकार मित्रोंके साथ आनन्दमें मग्न हो रही है !

इसी समय मेरे मानस नेत्रोंके सामने दो स्त्रियोंके चित्र खड़े हुए, एक लीलाका, दूसरा मेरीका।

(६)

देहली पहुँचते ही मैंने लीलाको पत्र लिखा। एक सप्ताहमें ही उसका उत्तर मिल गया। केवल चार-पाँच लाइनें थीं। लिखा था—आज-कल मुझे रत्तीभर फुरसत नहीं है। मनोहर उठने-बैठने तो लगे हैं, पर आँखें पहले ही जैसी हैं। थोड़ा और आराम हो जाय, तो इन्हें लेकर देश चली जाऊँगी।

मनोहरके स्वास्थ्यके समाचारसे मन कुछ आश्वस्त हुआ।

इसके बाद तीन-चार महीनेतक उन लोगोंका कोई समाचार नहीं मिला। मैंने राँची और मनोहके घरके पतेसे कई पत्र लिखे, पर किसीका उत्तर नहीं मिला।

करीब पाँच महीने बाद, एक दिन मैंने आफिससे लौटकर देखा, कि मेरे टेबिलपर एक लिफाफा पड़ा है। खोलनेपर उसमें दो पत्र निकले—एक लीलाका और दूसरा मनोहरका।

पहले मैंने लीलका पत्र पढ़ना शुरू किया, उसमें लिखा था—

"भैया आपके कई पत्र मिले, परन्तु मैं आपके मित्रके कामोंमें इतनी व्यस्त रहती थी, कि उत्तर देनेका समय नहीं मिला। अब भगवान्की कृपासे काफी समय मिल गया है, इसलिये यह पत्र लिख रही हूँ।

"आपके मित्रकी दोनों आँखोंका आपरेशन कराना पड़ा था। वह कैसा भयानक दिन था, इस बातको मैं शब्दों द्वारा प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ। डाक्टरोंने चारों ओरसे निराश होकर आपरेशन करनेका निश्चय किया था, परन्तु लाभ होनेकी कोई गारण्टी नहीं थी, अंधेका ढेला था, लगा-लगा—न लगा न लगा। इसपर आपके मित्र कहते थे, जब मुझे जन्मभर अन्धा होकर ही रहना है, आपरेशन करानेमें क्या हर्ज है ? इनकी बातोंसे उत्साहित होकर डाक्टरोंने आपरेशन कर डाला।

"भगवान्के अस्तित्वका सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि मैंने उनके चरणोंमें जो प्रार्थना की थी, वह पूर्ण हो गयी है, मेरा परिश्रम सार्थक हो गया है। वे आज अपने हाथसे आपको पत्र लिख रहे हैं, उसे पढ़ें।

"एक दिन आपने मेरा परिचय मालूम करना चाहा था। आज वह समय आ गया है कि मैं आपको अपना पूरा परिचय दे दूँ। परिचय देनेके बाद संसार मुझसे घृणा भी करने लगे, तो अब मुझे कोई कष्ट न होगा, क्योंकि मैं समझ गयी हूं, कि मेरा इस संसारमें आना

निरर्थक नहीं हुआ, कमसे कम एक आदमीके काम तो मैं आ ही सकी हूं, मेरे द्वारा एक आदमीको तो लाभ पहुँचा है।

"भारतवर्षकी असंख्य विधवाओंमेंसे मैं भी एक अभागिनी विधवा थी। मुझे कुछ पता नहीं, कि कब विवाह हुआ था और कब विधवा हुई थी, मैं समझती थी कि मैं कुमारी हूं, इसलिये कुमारियोंकी तरह ही रहती थी। चौदह वर्षकी उम्रमें जब मुझे मालूम हुआ कि मैं विधवा हूँ, विधवाओंकी तरह ही रहना पड़ेगा, तब मुझे बड़ा दुःख हुआ, पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़ी।

"इसी वैधव्य–दुःखसे घबड़ाकर एक दिन मैं आत्म-हत्या करने गयी थी, तब आपके मित्रने मेरी रक्षा की थी। ये हमारे जिमीदारके पुत्र हैं, बचपनमें मुझसे बहुत स्नेह करते थे। उस दिन मेरी रक्षा करनेके बाद इन्होंने मुझसे गुप्त रूपसे विवाह कर गाँवसे काफी दूर मेरे रहनेका प्रबन्ध कर दिया।

"ये देवता हैं, मेरे जैसी कुत्सित और अपवित्र स्त्रीको तो इनकी पूजाका भी अधिकार नहीं होना चाहिये था, पर इन्होंने स्वेच्छासे हारकी तरह गलेमें धारण कर लिया।

"इनके घरके कई आदमी मेरे साथ होनेवाले इनके विवाहकी बात जानते थे, इसलिये इनका दुबारा विवाह करानेकी कोशिस करते रहते थे। अन्तमें इनकी माताने किसी प्रकार विवाहका वचन ले लिया, बस दूसरे विवाहका यही कारण हुआ।

"अपनी नयी पत्नीके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें रुकावट और विघ्न न हो, इसलिये मैं मन्नाके साथ चुप-चाप उसके घर चली

गयी। मैं समझती थी, कि मेरे रहते वे अपनी स्त्रीसे प्रेम नहीं कर सकेंगे और स्त्री भी मुझे देखकर संदेह करेगी। इस प्रकार केवल तीन ही वर्ष व्यतीत हुए थे, कि मुझे भगवान्ने खींचकर फिर इनके चरणोंमें डाल दिया। मन्नाका तार पाते ही मैं पागलोंकी तरह यहाँ पहुँची, तो देखा, कि इनके पास कोई नहीं है। इनकी सहधर्मिणी, सुख-दुःखकी समभागिनी, इनके शरीरमें चेचक होनेकी सम्भावना सुनते ही रफूचक्कर हो गयी थी।

"आपने तो देखा था, कि मैंने पत्र भेजकर एक बार उन्हें बुलाया था, पर वे पतिसे मिले बिना ही वापस लौट गयीं, तबसे फिर कभी नहीं आई।

"एक दिन उन्होंने आनेके लिये लिखा था, पर आपके मित्रने लिखवा दिया, कि तुम्हारा यहाँ आनेका कोई काम नहीं है। तुम्हारा खर्च-पत्र बराबर जाता रहेगा, मैं तुम्हें अपने सामने नहीं देखना चहता।

"भैया, सच बतलाना, इसमें मेरा अपराध है या उनका? मैंने तो इसके लिये जरा भी प्रयत्न नहीं किया, फिर भी भगवान्ने न जाने क्यों मुझे इनके चरणोंकी सेवामें लगा दिया है। ये मेरे स्वामी हैं या उनके, जो अपनी इच्छासे, इनका त्यागकर चली गयी? उसने इनके आत्माको, इनके मनुष्यत्वको, इनकी उदारताको प्यार नहीं किया था, प्यार किया था—इनके बाहरी सौन्दर्यको। इसलिये जब इनके शरीरका वह सौन्दर्य नष्ट हो गया, तो वह भी छोड़कर चली गयी। अब ये अच्छे हो गये, तो फिर आना चाहती है!

"इस बार आफिसकी छुट्टी होतेही हम लोग आपके दर्शन करेंगे। ताजमहल देखनेकी बहुत दिनसे इच्छा हो रही है। सुना है, देहली-से नजदीक पड़ता है। किसी चाँदनी रातमें ताजकी छायामें बैठकर देखूंगी, कि वहाँ चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना कैसी लगती है। मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिये और होसके तो मेरे प्रति घृणाके जो भाव आपके मनमें पैदा हो गये हों, उन्हें निकाल डालिये। पत्रका उत्तर अवश्य दें।

—आपकी बहन लीला"

आनन्दसे मेरा हृदय भर उठा। मनोहरको जो दुबारा आँखें मिली हैं, वह उसके पुण्यसे नहीं, इस लड़कीकी तपस्याके फलसे मिली हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

फिर मनोहरका पत्र खोला। उसने लिखा था—

"फिर दिवाकर, मेरा खोया हुआ धन, लुटा हुआ सौन्दर्य, नष्ट हुई दृष्टिशक्ति फिर प्राप्त हो गयी है। आज मेरे समान सुखी संसारमें कौन है ? मेरी दोनों आँखें किसके प्रताप और किसकी तपस्यासे लौटी हैं, तुम उसका नाम जानते हो, दिवाकर भैया ?—वह नाम लीला है।

"मैं पिछली सब घटनाओंको सुन चुका हूँ। मेरी उस भयङ्कर बीमारीके समय मेरी पत्नी मुझे अकेला छोड़कर चली गयी, पर लीला तो मुझसे जरा भी पृथक नहीं रह सकी, इसके मनमें तो जरा भी घृणा उत्पन्न नहीं हुई, इसे तो अपने जीवनके नष्ट होजानेका जरा भी भय नहीं हुआ ! परन्तु इतनेपर भी समाजकी दृष्टिमें लीलाके

साथ मेरा संबन्ध अवैध ही प्रतीत होगा, क्योंकि मैंने उसका सामाजिक नियमोंके अनुसार पाणि-ग्रहण नहीं किया है। उसके साथ मेरा सम्बन्ध हृदयका था, सामाजिक नियमोंमें जकड़ा हुआ नहीं। समाजने जिसको अपने नियमोंके अनुसार धर्मकी साक्षी देकर मेरे हाथमें सौंपा था, जीवन और मरण, सम्पद् और विपद्में समभावसे रहनेके लिये जिसे मेरी सङ्गिनी बनाया था, आज वह कहाँ है? मेरी बीमारीकी बात सुनते ही उसे फिट होने लगी थी, मेरे पास रहनेपर उसके मर जानेकी सम्भवना थी, यही बात है न? दिवाकर भैया, क्या पत्नियाँ ऐसी ही होती हैं? समाजने ऐसी हृदयहीन स्त्रीके साथ मेरे जीवनकी गाँठ बाँधकर, मेरा उपकार किया था या अपकार?

"जिसने अपने शरीरकी समस्त शक्ति, हृदयकी समस्त ममता खर्चकर मेरी सेवा की है, सामाजकी दृष्टिमें क्या अब भी वह उसी प्रकार हीन होकर रहेगी? नहीं, मैं उसको प्रकाशमें ले आया हूं और अपनी स्त्रीके रूपसे प्रसिद्ध कर दिया है। आज मैं उसका पति और वह मेरी स्त्री है। तुम्हारे मुंहसे एक दिन 'मिसेज़ मनोहर' सुनकर उसका मुंह लाल हो उठा था, परन्तु आज उसने अपनी तपस्यासे इस सम्मानको प्राप्त कर लिया है।

अगामी ईस्टरकी छुट्टियोंमें हमलोग यात्राके लिये निकलेंगे। छुट्टियोंमें कुछ दिन और बढ़ा दिये हैं। पिताजी भी साथ होंगे। प्रसन्नताकी बात है, कि लीलाको उन्होंने अपनी पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण

कर लिया है। इस समाचारसे तुम्हें भी अवश्य प्रसन्नता होगी, क्योंकि तुम लीलाको अपनी बहन समझते हो।

"थोड़ी प्रतीक्षा कीजिये मित्र, बीचमें कुछ ही दिन हैं, फिर हम लोग आकर तुम्हारे सरपर सवार होंगे।

—तुम्हारा स्नेही मनोहर"

मैं उसी समय दोनों पत्रोंका उत्तर लिखने बैठ गया।

गौरव मुकुट

(१)

रघुवीर पैदा तो हुआ था वैश्य परिवारमें, पर उसे नमक-तेल, आटा-दाल, तोलकर जीवनके साथ दिन-रात झड़प करनेकी जरूरत न पड़ती थी। जिस घरमें वह पैदा हुआ था, उसमें चञ्चला लक्ष्मी अचला होकर निवास कर रही थी। काफी विस्तृत जिमींदारी थी, अनेक कम्पनियोंके शेयर्स थे, गवर्मेंट प्रामेसरी नोटके बँडल आलमारीमें डटे हुए थे और बड़े-बड़े शहरोंमें कोठियाँ थीं।

जिस साल रघुवीरने बी० ए० पास किया, उसी साल उसके माता-पिता हैजेकी भेंट हो गये, रघुवीर अकेला रह गया।

इस अकेलेपनको दूर करनेके लिये रघुवीरने अगले साल विवाह कर लिया और विवाहका आनन्द लूटनेके लिये वह अपनी स्त्रीको लेकर मसूरी चला गया।

मसूरी शैलके सर्वोच्च शिखरपर जो बङ्गला था, उसमें रघुवीरने डेरा डाला। बङ्गलेके चारों ओर प्रकृति अपने सौन्दर्यकी डाली लिये दिन-रात खड़ी रहती थी।

बङ्गलेके एक भव्य कमरेमें, पास ही पास दो कुरसियाँ बिछाकर, युवक युवती बैठते और सामनेके बरफीले मैदानकी ओर घण्टों देखते रहते थे।

रघुवीर पत्नीका मनोरञ्जन करनेकी भरसक कोशिस करता था। वह ऐसे-ऐसे अज्ञात देशोंकी कौतूहलवर्द्धक अनेक कहानियाँ उसे सुनाया करता, जिनका अस्तित्व भी शायद इस सँसारमें न हो, जिन्हें सुनकर युवतीके नेत्रोंमें असीम विस्मयकी ज्योति भर जाती थी। कभी-कभी रघुवीर भारतीय किसानोंकी करुण-कथासे उसके हृदयको आलोड़ित कर डालता था। ये लोग पहाड़ोंपर हल चलाकर खेती करते हैं और सिरपर गठरी रख इस आलोकमय प्रदेशमें आते हैं। सभ्य मनुष्य कुछ चाँदीके टुकड़े देकर उनके परिश्रमसे उत्पन्न उस धन भण्डारको खरीदकर अपने काममें लाते हैं, उन्हें अपने परिश्रमका जो मिलता है, वह बहुत कम होता है, यह बात उनके फटे-पुराने कपड़े, दुबले शरीर और नंगे पैरोंसे अच्छी तरह मालूम हो जाती है। किसी पेड़के नीचे उनका छोटा-सा झोंपड़ा होता है, जिसमें दरवाजा लगानेकी उन्हें फुरसत नहीं मिलती। घरमें मिट्टीका घड़ा,

दो-चार टूटे-फूटे बर्तन। कभी आँधी-तूफान आ जाता है, तो उनके जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित हो जाता है, लेकिन अन्धकारमें रहनेके आदि इन जीवोंको उससे जरा भी कष्ट अनुभव नहीं होता।

कमला यह सुनते-सुनते हँस पड़ती थी। ग्रामीणोंकी इस दुर्दशा की बात सुनकर उसके हृदयमें उनके प्रति कभी करुणा या समवेदनाका संचार नहीं होता था।

किसी दिन रघुवीर अपने कमरेके मूल्यवान सामान उठा-उठाकर कमलाको दिखाता और बतलाता, कि इसका सूक्ष्म सौन्दर्य कहाँ है और इसका मूल्य कितना है। कहाँसे, कितनी जाँफिशानीके बाद इसको लाया गया है। इस प्रकारके विस्मयजनक इतिहासको सुनकर कमलाके दोनों नेत्र हर्षसे उज्ज्वल हो उठते थे।

एक दिन रघुवीरने पूछा—अच्छा, बतलाओ तो तुम्हारा यह हीरेका हार कितने दामका होगा?

कमलाने अपने गलेमें पड़े हारके हीरेको उंगलियोंसे टटोलते हुए कहा—बहुत होगा पाँच-सात हजारका होगा, लेकिन सुशीला बहनके पास इससे भी कीमती हार है। उसका हीरा बड़ा भी है और कटमें सुन्दर भी।

रघुवीरने नाक चढ़ाकर कहा—अच्छा, कल मुझे दिखलाना।

एक दिन कमलाने कहा—तुम्हारी इस कारकी अपेक्षा मि० गुप्ताकी कार बहुत सुन्दर है। कैसा बढ़िया न्यू माडल है!

—ठीक है, मैं भी यह सोच रहा हूँ, कि इसे बेचकर नया माडल खरीदा जाय।

कमलाने प्रसन्न होकर कहा—हाँ, ठीक तो यही था, लेकिन....

रघुवीरने लापरवाहीसे कहा—लेकिन क्या, दो-चार सौका नुकसान हो जायगा, यही न ?

कमलाने भी उसी ढङ्गसे कहा—नुकसान होता है, तो हो जाने दो, चीज तो बढ़िया आ जायगी। लोगोंमें हमारी इज्जत तो बढ़ जायगी। अगले साल यदि तुम रायबहादुर हो गये तो........

रघुवीरने उसकी बात काटकर कहा—हो गये तो क्या, जरूर हो जाऊँगा, तुम देख लेना। हाँ देखो, तुम्हारे सामने यह जो नेपोलियनकी तसवीर टँगी है, जानती हो, यह कहाँसे खरीदी गयी है ?

—कलकत्ताके न्यू मार्केटसे।

रघुवीरने हँसकर कहा—तुम कुछ नहीं जानती। यह तो सीधे फ्राँससे मँगाई गयी है। इसका मूल्य छ हजार रुपये है। संसार भरमें इसके जोड़की तसवीर नहीं है।

रघुवीर अभिमान-मिश्रित दृष्टिसे कमलाकी ओर देखता हुआ सिगरेट पीने लगा।

* * * *

कमलाने पूछा—क्या घूमने जा रहे हो ?

—हाँ मि० सिंगलके यहाँ टी-पार्टी है, तुम भी चलती हो ?

—नहीं। ये मामूली गहने पहनकर कहीं जानेकी मेरी तो इच्छा नहीं होती।

कमलाको नीचेसे ऊपर तक देखकर रघुवीर चला गया।

दो-एक घण्टे बाद कमला शृङ्गार करके घूमने जानेकी तैयारी कर ही रही थी, कि एक सत्रह-अठारह वर्षकी एंग्लो-इंडियन युवती अभिवादन करके उसके सामने खड़ी हो गयी। उसके हाथमें एक बहुत ही खूबसूरत छोटा-सा सूटकेस था। कमलाने पूछा—आप कैसे पधारी हैं ?

—राय रघुवीर नारायणका बङ्गला यही है ?

—यही है लेकिन वे इस समय घर नहीं हैं।

युवतीने हँसते हुए कहा—मैं यह जानती हूं मेरा काम तो उनकी श्रीमतीजीसे है। क्या मैं बैठ सकती हूँ ?

कमलाने कुरसीकी ओर इशारा किया, युवती बैठ गयी। उसने मेजपर सूटकेस रख, उसे खोलते हुए कहा—मैं यहाँके प्रसिद्ध जौहरी मेसर्स जौन स्मिथकी दूकानसे आ रही हूं। एक हीरेका नेकलेस—

कमलाके नेत्रोंमें आनन्द झलक उठा। बोली—मैं समझ गयी, लेकिन वे कहाँ रह गये ?

—वे लाइब्रेरी गये हैं।

युवतीने यह कह, हीरेका नेकलेस निकालर कमलाके सामने रख दिया। रघुवीरने कहा था, कि मि० सिङ्गलके यहाँ टी-पार्टीमें जा रहा हूं और यह युवती कह रही है, लाइब्रेरी गये हैं! पर इस असम्बद्धताकी ओर ध्यान देनेकी फुरसत उस समय कमलाको न थी। उसके सामने चमचमता हुआ हीरेका नेकलेस रक्खा था। वह बड़े ध्यानसे हीरेकी डाइयोंको देखने लगी।

देखते-देखते नेकलेसने कमलाके हृदयमें घर कर लिया। क्या इसे पहनकर सुशीलाका अभिमान नहीं तोड़ा जा सकता? कुछ देर बाद कमलाने मुस्कराते हुए कहा—इसका क्या दाम है?

—पहले यह बतलाइये, आपको पसन्द आया या नहीं, कीमतकी बात पीछे होगी?

—इससे बढ़िया और कोई नेकलेस आपके पास नहीं है?

युवतीने कहा—इस नेकलेसमें जो हीरा लगा है, उसके जोड़का हीरा भारतवर्षमें नहीं है। मि० स्मिथने एक अमेरिकन करोड़पतिसे खरीदा था। केवल इस हीरेके ही 'हेमिल्टन एण्ड संस' पच्चीस हज़ार दे रहा था, लेकिन हमारे साहबने दिया नहीं।

कमलाने प्रसन्न होकर कहा—तो मैं इसे लिये लेती हूँ। मूल्य—

युवतीने हँसकर कहा—राय साहबसे ठीक किया जायगा। अच्छा अब मैं जाती हूं, कष्टके लिये धन्यवाद।

कमलाके अधरोंपर विजयपूर्ण हास्य प्रस्फुटित हो उठा। वह दर्पणके सामने खड़ी होकर अपने यौवनको निहारने लगी।

(२)

उपर्युक्त घटनाको तीन मास बीत गये। रघुवीरने बड़े-बड़े मँहगे समानोंसे अपना बँगला भर दिया। कमलाके शरीरपर अलङ्कारोंकी कोई भी कमी न रही।

यह सब ठीक था, पर रघुवीर सुबहसे तीसरे पहरतक हमेशा बाहर ही रहता था। शामके वक्त घर आता और कमलाको साथ ले

घूमने निकल जाता। अपने चारों ओर कौतूहलपूर्ण दृष्टियोंको देख कर उसका हृदय उल्लाससे भर जाता था। रघुवीर सड़कपर चलने-वालोंकी साज-सज्जाको बड़े ध्यानसे देखकर कमलासे उसकी समा-लोचना करता चला जाता था।

एक दिन इसी प्रकार घूमते हुए उसका एक पुराना घनिष्ट मित्र मिल गया। लेकिन रघुवीर उससे आँख बचाकर दूसरी ओर खिसकने ही वाला था, कि उसने आवाज देकर उसके इरादेको नष्ट कर डाला।

विनय मोटे खद्दरका कुरता पहने और खद्दरकी ही चादर ओढ़े था। पैरके जूतेकी ओर रघुवीरने देखा नहीं।

विनयने कहा—मित्र, तुम्हें तो पहचानना ही मुश्किल हो रहा है, कहो क्या समाचार है? नमस्ते भाभीजी!

शिष्टाचार समाप्त होनेपर रघुवीरने कहा—अरे तुम ऐसी ठंढमें सिर्फ एक कुरता पहने घूम रहे हो?

विनयने कहा—मेरी बात छोड़ दो। मैं तो कालेजका एक मामूली प्रोफेसर हूँ।

इसके बाद उसने कमलासे पूछा—कहिये, आपको मसूरी कैसा मालूम होता है?

—बहुत सुन्दर। मैं समझती हूँ, यहाँ देवताओंका राज्य है।

—देव-देवियोंके सिवा मामूली मनुष्योंका यहाँ रहना ठीक नहीं प्रतीत होता। मैं उसका प्रमाण हूँ।

कमलाने कौतुकपूर्ण भावसे पूछा—अर्थात्?

—अर्थात् हमारे खद्दरके कपड़े—अभी-अभी तो रघुवीरने कहा था................

रघुवीरने कुछ लज्जित होकर कहा—अच्छा, यदि मैं तुम्हें आज शामको चाय पीनेके लिये निमन्त्रित........

विनयने उसे रोककर कहा—आज नहीं, कल ठीक रहेगा। मुझे अभी अस्पताल जाना है। भाभीजी आप भी कुछ ख्याल न करें, कल मैं इसी समय यहीं मिलूंगा। नमस्ते।

विनय चला गया, तो रघुवीरने कमलाकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—बेचारा गरीब आदमी है, ये लोग सदा व्यस्त रहा करते हैं। संसारमें इतना सौन्दर्य भरा पड़ा है, पर इन्हें उसे देखनेकी फुरसत ही नहीं मिलती।

कमलाने कहा—बड़ा सरल आदमी है।

रघुवीर खिल-खिलाकर हँस पड़ा। कहा—अर्थात् फूल—मूर्ख। कमला, यह बात यद्यपि मेरे मित्रके लिये अपमानजनक है, पर है सच्ची।

कमला कुछ जवाब देना ही चाहती थी, कि सामनेसे मि० सिंगल का परिवार आ पहुँचा, इसलिये यह प्रसंग जहाँका तहाँ रुक गया।

अगले दिन विनय फिर मिला। रघुवीरने कहा—कहो, आज तो तैयार हो न ?

विनयने कमलाको नमस्ते कर हँसनेका प्रयत्न करते हुए कहा—जब वादा कर चुका हूँ, तो उसे पूरा करना ही पड़ेगा।

कमलाने विनयमें कुछ सङ्कोचका भाव देखकर कहा—लेकिन आपके भावसे मालूम होता है, कि यदि आपको आज भी छोड़ दिया जाय, तो अच्छा हो ?

विनयने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुपचाप खड़ा रहा।

रघुवीरने विनयके कंधेपर हाथ रखकर कहा—क्यों भाई क्या मामला है ?

—घरवाली बीमार है, इसलिये मैं बड़े झँझटमें फँसा हुआ हूँ।

कमलाने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—बीमार हैं, आपकी श्रीमतीजी ? चलो मैं उन्हें देखूंगी।

लेकिन विनय वहीं खड़ा रहा और कुण्ठित स्वरसे बोला—लेकिन भाभीजी, वह स्थान बड़ा गंदा है, आपको वहाँ जानेमें कष्ट होगा।

—चलो, इस समय अतिशयोक्तिकी जरूरत नहीं है।

—नहीं, मैंने रत्तीभर अतिशयोक्ति नहीं की। महावीर मुहल्ला देखा है ? मैं वहीं रहता हूँ। वहाँ एक भी अच्छा बंगला नहीं है।

—अच्छा बंगला न सही, साफ-सुथरे घरोंकी कहीं कमी नहीं है।

इसके बाद कमलाने अपने पतिकी ओर देखा। रघुवीर इस अप्रीतिकर व्यापारको दूर ठेलनेके लिये पहाड़ी उपत्यकाकी ओर ध्यानमग्न योगीकी भाँति देख रहा था।

कमलाने उससे कहा—क्या तुम नहीं चलोगे ?

विनयकी मित्रता तो रघुवीरके साथ ही थी, इसलिये लाचार होकर उसे भी उन दोनोंके साथ जाना पड़ा।

बाजारके आखीरमें, पहाड़की एक गुफाके समान वह महावीर मुहल्ला था, जहाँ मसूरीके मजदूर पेशा लोग अपने जीवनके दिन बिताते थे। तमाम मकान गंदे और बदबूदार थे। विनय रघुवीरको लेकर जिस मकानमें पहुँचा, उसे इस मुहल्लेका राजप्रासाद कहा जा सकता था। विनयके पास दो कमरे थे। बाहरका कमरा उठने-बैठनेके काममें आता था और भीतरवाला रसोई बनानेके। दोनों कमरे सामानसे इस प्रकार भरे हुए थे, मानों मसूरीके रहनेवालोंका कुल सामान यहीं लाकर इकट्ठा किया गया है। कमलाका नाक यह देखकर सिकुड़ गया।

विनयने संकुचित होकर कहा—आपको बैठानेके लिये मेरे पास कुर्सियाँ नहीं हैं भाभीजी, इसलिये यह चारपाई हाजिर है। अब तो आपको मेरी अतिशयोक्तिका प्रमाण मिल गया ?

कमलाके कुछ कहनेसे पहले ही रघुवीर बोल उठा—मैं यह मानता हूँ, कि तुम इस विषयमें पूरे स्पष्टवक्ता हो, लेकिन कमसे कम स्थानको साफ-सुथरा तो रक्खा जा सकता है, तुमसे इतना भी नहीं होता।

इस प्रश्नको सुनकर कमलाने पतिकी ओर देखकर कहा—तुम्हें पता नहीं है, इनकी स्त्री बीमार हैं।

रघुवीर शर्मिन्दा होकर खाटपर बैठ गया। कमलाने कहा—चलिये, मैं आपकी स्त्रीको देखने चलती हूँ।

विनयने फीकी मुस्कराहटके साथ कहा—चलिये!

भीतरके कमरेमें पैर रखते ही कमलाके मनमें हुआ, कि यहाँ न आना ही अच्छा होता। मैलेसे बिस्तरे पर एक कुरूपा स्त्री पड़ी हुई

कराह रही थी। छोटासा बच्चा उसके पास पड़ा था, शायद वह सो रहा था। रोगिणीका जोर-जोरसे साँस चल रहा था।

कमला चंचल होकर पासके ब्रेकेटपर रक्खी हुई पुस्तकोंको उलट-पलट करने लगी। इसी बीच उसने कनखियोंसे देखा, कि विनय निःसंकोच भावसे अपनी स्त्रीकी सुश्रूषा कर रहा है। उसके चेहरेपर रत्तीभर विरक्ति या क्लान्ति नहीं है। विनय दवा पिलाकर स्त्रीके सिरहाने बैठ गया और उसके रूखे बालोंमें उँगलियाँ फेरने लगा। अचानक उसे मालूम हुआ कि कमला मेरी ओर कभी-कभी छिपी नजरसे देख रही है। बोला—भाभीजी, इन्हें बड़ा कष्टप्रद रोग हो रहा है। रोग मनुष्यकी मर्यादा नहीं समझता।

विनयकी यह बात कमलाको अपने ऊपर अभियोग सूचना-सी प्रतीत हुई। उसने नीचे दृष्टि किये हुए कहा—ये अच्छी होजाँय, तो फिर किसी दिन आकर मिलूंगी।

विनयने उठते हुए कहा—चलिये आपको थोड़ी दूर पहुँचा आऊँ।

कमलाने हँसकर कहा—धन्यवाद, बाहर आपके मित्र खड़े हैं, हम लोग बिना किसी कठिनाईके यहाँसे जा सकते हैं। आप यहीं रहिये, देखते नहीं, इनका भरोसा आपके ही ऊपर है।

कमला यह कहकर बाहर निकल आई और रघुवीरसे बोली—आज सुबह उठकर न जाने किसका मुंह देखा था, जो दस मिनट तक उसका प्रायश्चित्त करना पड़ा।

रघुवीरने कहा—मैं तो वहाँ खड़े-खड़े ऐसा अनुभव कर रहा था, कि अभी उल्टी होनेवाली है। यह भी किसी पापका फल था।

—और उस पापकी मात्रा मेरी ओर ही अधिक थी, क्योंकि मुझे भीतर तक जाना पड़ा था।

—वहाँ शायद........

कमलाने हँसते हुए कहा—शायद नहीं, एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा है। तुम्हारे ये मित्र केवल सरल ही नहीं हैं, अत्यन्त सेवा-परायण और पत्निभक्त भी हैं।

रघुवीरने कौतुकपूर्ण भावसे कहा—उसकी प्रकृतिका एक दृष्टान्त........

कमलाने उसे रोककर कहा—वही कह रही हूँ, सुनो। वह ऐसे तन्मय भावसे उस कुत्सित और कुरूपा स्त्रीकी सेवा कर रहा था, मानों वही उसका भगवान है। मैं तो ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

कुछ देर चुप रह कर फिर बोली—लेकिन उसमें एक विशेष प्रकारकी निष्ठा है। हार्दिकता उसकी प्रत्येक अंगभंगीसे टपकती थी। मेरे नेत्रोंको वह भाव बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ।

रघुवीरने हँसकर कहा—इस समय मुझे चायकी बहुत जोरकी प्यास लग रही है, चलो किसी होटलका दरवाजा खट-खटाएँ।

दोनों हँसते हुए होटलमें घुस गये।

(३)

वर्षा प्रारम्भ होते ही रघुवीरको मसूरी छोड़ देनी पड़ी। लेकिन विनयके घरकी स्मृति कमलाके हृदयसे नष्ट न हुई।

कमला उस दृश्यको उपहास योग्य समझ कर उड़ा देना चाहती है—उसमें आवश्यकतासे अधिक कुत्सित भावका आरोप कर उधरसे मन हटाना चाहती है, परन्तु रह-रहकर उसके मनमें होता है, कि यह उचित नहीं हो रहा है, न जाने कहीं कोई त्रुटि उसे देखने और उसकी आलोचना करनेमें रह गयी है।

बाहरके विपुल ऐश्वर्यको अपनी दृष्टिसे दूर रख, उस रोगशय्या-शायिनी कुत्सित तरुणीकी ओर एकाग्र दृष्टिसे देखना और उसकी परिचर्यामें दिन भर लगे रहना, क्या एकदम निरर्थक है? या इसके भीतर कोई विपुल सम्पत्ति छिपी हुई है? टूटा फूटा, गंदा मकान है, चारों ओर अभाव ही अभावके दर्शन होते हैं, सौन्दर्य-हीनता तीक्ष्ण शरकी तरह हृदयमें जाकर लगती है, इतने पर भी विनयकी वह हार्दिक सेवा-परायणता अशोभन नहीं प्रतीत होती। विनयके दोनों नेत्रोंसे उत्पन्न होनेवाली दृष्टिकी स्निग्धतासे, वह कुरूपता मानों सौन्दर्यमें बदल जाती है।

यह ऐश्वर्य, यह ख्याति और यह विलास-सुख लोभनीय होनेपर भी कुत्सितके प्रति सुन्दरताका वह हार्दिक आकर्षण तुच्छ नहीं कहा जा सकता, बल्कि कुछ देर उपभोग करनेकी सामग्री प्रतीत होती है; जैसे जाड़ेके दिनोंमें, शामके वक्त अस्ताचलगामी सूर्यकी हलकी किरणें शरीरको भली प्रतीत होती हैं।

यद्यपि रोग शय्यापर पड़नेकी प्रार्थना भगवान्से कोई नहीं करता, लेकिन कभी ऐसा समय आ ही जाय तो विनयकेसे सेवानिपुण हाथ और स्नेहपूर्ण नेत्र उसकी तकलीफको बहुत कम कर देते हैं।

रघुवीरने उसे क्या नहीं दिया है ? पलक झपकते ही अधिकसे अधिक मूल्यके पदार्थ उसके चरणोंके पास लाकर रक्खे जाते हैं। वे हरवक्त मेरे सामने बैठे हँसते रहते हैं; इच्छा होते ही वासनाएँ पूर्ण की जाती हैं, इतनेपर भी तृप्ति क्यों नहीं होती ? इच्छाकी यह सीमाहीन पूर्ति क्या सदा इसी प्रकार अतृप्तिके विक्षोभ सागरमें तैरती रहेगी ? मनुष्यके सामने इस गौरवमय जीवनका मूल्य यद्यपि साधारण नहीं है, लेकिन मालूम होता है, तृप्ति किसी और ही वस्तुकी प्रशंसा प्राप्त करनेके लिये सदा व्यग्र बनी रहती है। ऐसा क्यों होता है ?

स्वामीका उद्देश्य अर्थसञ्चय करना होता है, इसका अर्थ यह होता है कि अर्थके द्वारा अपनी तमाम वस्तुओंको आलोकित करके लोगोंको दिखलाना और उनकी प्रशंसा प्राप्त करनेका आकर्षण ही इसका मूल कारण है। कमला जैसे अपने गलेमें पड़े हीरोंसे जड़े हुए हारको देखकर समझती है कि मेरा गौरव बढ़ रहा है, लोगोंमें प्रतिष्ठा हो रही है, अमीरी टपक रही है, क्या वे मुझे देखकर इसी प्रकारकी कोई बात अपने मनमें नहीं सोचते ?

नहीं, मालूम होता है, मैं पागल हो उठी हूँ। तुच्छतम दरिद्रताके साधारण दृश्यने, एक क्षणमें मेरे हृदयको ऐसा काला कर दिया है, कि बार-बार उसकी चिन्ता उत्पन्न होने लगी है।

इस प्रकार कुछ महीने बीत जानेके बाद कमला मसूरीकी उस स्मृतिको भूल गयी। रोग-शोककी दुःखद स्मृति जैसे कुछ दिन तक मनुष्यके हृदयको पीड़ित करती रहती है, इसी तरह कई महीने

तक मसूरीकी उस दरिद्रताकी स्मृतिने कमलाको परेशान किये रक्खा। धीरे-धीरे वह स्मृति लुप्त हो गयी।

उस दिन मिसेज़ गुप्ताके घर पार्टी थी। कमलाने अपना शृङ्गार करके नौकरको मोटर तैयार करनेके लिये कहा। रघुवीर उस समय घर नहीं था, न जाने कहाँ गया हुआ था, इस लिये कमलाको अकेले ही निमन्त्रण-रक्षा करनेके लिये जाना पड़ा।

मिसेज़ गुप्ताने अपने हालको अङ्गरेजोंके बाल-नाचके ढङ्गपर सजाया था। उनके यहाँ इस तरहके उत्सव अक्सर हुआ करते थे। उनके पति विलायतसे लौटे हुए थे और कमसरियटमें काफी बड़े वेतन पर काम करते थे, इसलिये पाश्चात्य सभ्यताकी वे उपासिका होंगी, यह कहना ही व्यर्थ है।

कमलाके पहुँचते ही मिसेज़ गुप्ताने बड़े आदरके साथ उसकी अभ्यर्थना की। अन्यान्य स्त्रियाँ कमलाकी ओर लोलुप दृष्टिसे देखने लगीं। कमला सबको अभिवादन कर पियानोंके सामने बैठ गयी। चारों ओरसे गानेका अनुरोध होने लगा।

एक-दो-तीन। लगातार तीन गीत समाप्त हो जानेपर सारा हाल कमलाकी प्रशंसासे भर गया। आत्मगौरवके आलोकसे कमलाका मुंह उज्ज्वल हो उठा।

इसी समय मिसेज़ गुप्ताने आकर कहा—कमला, तुम बहुत थक गयी हो, थोड़ी देर विश्राम कर लो।

हालके बाहर खुला मैदान था, जिसमें अनेक स्थानोंपर फूलोंके

पौधों और चमेलीकी झाड़ियोंसे कुंज बनाए हुए थे। कमला इसी प्रकारके एक कुंजमें जाकर आरामकुरसीपर पड़ रही।

कमलाको वहाँ लौटते ही मालूम हुआ, कि मेरे पास वाले कुंजमें दो स्त्रियाँ बात कर रही हैं। उस समय कुछ अन्धेरा हो गया था, शायद इसी लिये बात करने वालियोंने कमलाका यहाँ आना नहीं देखा अथवा देखा तो उसे पहचाना नहीं।

पहलीने कहा—तुम यह क्या कह रही हो बहन, कि यह सब जादूका खेल है, भूतोंकी माया है,—मैंने उनकी जबानी सुना है कि रघुवीरने रेसके चक्करमें फँसकर अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया है। इसके सिवा पत्नीके ऐशोआराममें पानीकी तरह रुपया खर्च करना पड़ रहा है। लेकिन है बड़ा मजबूत आदमी, जो अभीतक अपनी प्रतिष्ठा बचाकर समान भावसे जीवन बीता रहा है।

पहलीने कहा—लेकिन आज कमला जो नेकलेस पहनकर आई है, उसे तुमने देखा है ? कैसा सुन्दर हीरा है।

दूसरीने एक निःश्वास छोड़कर कहा—किसको पता है, कि इस नेकलेसके पहननेका आज ही अन्तिम दिन हो। सम्भव है; कमला आज अन्तिमवार ही पार्टीमें शामिल हुई हो !

· —नहीं बहन, ऐसी बात न कहो। कमला बड़ी अच्छी है। शायद तुमने जो कुछ सुना हो, वह ठीक न हो।

—मेरी भी भगवान्से प्रार्थना है कि ऐसा ही हो। रघुवीर अब भी सोच-समझकर चले तो भयानक विपत्तिसे बच सकता है।

लेकिन इन लोगोंके व्यवहारमें जितना आडम्बर घुसा हुआ है, उसे देखते अनुमान नहीं होता कि वह सँभल सकेगा।

इसी समय हालसे बाजेकी आवाज आने लगी।

पहलीने कहा—मालूम होता है, नाच शुरू होनेवाला है। हाँ, आज तुम अपना साथी किसे बनाओगी?

—जिसको बहुत दिन पहलेसे ही चुन रक्खा है।

दोनों हँसती हुए वहाँसे चली गयीं। कमला चित्राङ्कितकी तरह वहीं बैठी रह गयी। यह बात नहीं है कि कभी-कभी कमलाके हृदयमें इस प्रकारका सन्देह उत्पन्न नहीं होता था, लेकिन वह पतिको इतना निर्बोध न समझती थी। इस प्रकार सर्वस्वान्त होकर वे लोगोंकी हँसीके पात्र बनेंगे, इसपर कमलाको विश्वास न होता था। वह स्वप्नमें भी ऐसी कल्पना न कर सकती थी।

वाह्याडम्बर? हाँ यह वस्तु हम लोगोंके पास है और पूरी मात्रामें है। समाजमें रहते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है। समाज, धनवानोंसे सबसे पहले सुरुचिका दावा करता है। धनका सद्व्यवहार इस शिल्प-सौन्दर्यकी प्राणप्रतिष्ठा है। किन्तु उस सुरुचिकी कहानीके किसी गुप्त स्थलमें यदि कलङ्क-कालिमा लगी हुई हो, तो फिर मार्यादा को कहाँ स्थान मिल सकता है। आह, उन्हें यह रेसका शौक कैसे लग गया?

पति-पत्नी एक दूसरेके साथी होते हैं, भलेमें भी और बुरेमें भी। लेकिन रघुवीरके जीवनकी यह दिशा कमलासे एकदम अदृश्य थी। धनगर्वके तीव्र आलोकने इस सरल परिचयके मृदु आलोकको

दबा रक्खा था। दोनोंमेंसे किसीको किसीके हृदयका पता न था, केवल बाहरी साज-सज्जामें ही उन्हें तृप्ति प्राप्त हो जाती थी। विनय-की वह मसूरीवाली स्मृति आज एक बार फिर कमलाके हृदयमें उत्पन्न हो गयी। इस आलोकमें उस कहानीकी अस्पष्टताएँ, स्पष्ट हो उठीं। कमला, मिसेज़ गुप्ता और अन्य स्त्रियोंसे छिपकर वहाँसे चल पड़ी।

(४)

अगले दिन रघुवीरने कमलाके सूखे और उतरे हुए मुंहकी ओर देखकर कहा—क्या तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है ?

कमलाने सिर हिलाकर क्या कहा, इसका उसे स्वयं पता न चला। फिर सहसा उसने सिर उठाकर कहा—तुम क्या अभी कहीं जाना चाहते हो ?

—हाँ, मि० स्टेपलसे जरा काम है, उनसे मिलने जा रहा हूँ।

कमलाने रघुवीरका हाथ पकड़कर कहा—नहीं, आज कहीं जाना-आना मुलतवी कर दो।

रघुवीरने हँसकर कहा—अर्थात् ? मैं तुम्हारी बातका मतलब नहीं समझा कमला।

कमलाने विषादपूर्ण धीमे स्वरसे कहा—इतने दिनसे तो बाहर ही बाहर घूम रहे हो। आज थोड़ी देर घर बैठो।

रघुवीरने कौतूहलपूर्ण स्वरसे कहा—क्या मामला है कमला ? तुमने कोई काव्य लिखना शुरू कर दिया है क्या ?

कमला—काव्य लिखना असम्मानका कार्य नहीं है और अनेक समय ऐसे आते हैं, जब जीवनमें काव्यकी जरूरत पड़ जाती है।

रघुवीरने चंचल होकर कहा—आठ बजे मुझे उनसे मिलना है, वहाँसे लौटकर तुम्हारी बातें सुनूंगा।

कमलाने विनयपूर्ण स्वरसे कहा—लेकिन मैं आज तुम्हें 'रूटीन वर्क' नहीं करने दूंगी। इतने दिनतक कामकाजकी बातें होती रही हैं, आज थोड़ी फालतू बातें होंगीं।

रघुवीरके मुंहपर यह सुनकर विरक्तिकी रेखा फूट उठी। उसने उन्हें अपनी बनावटी हँसीमें छिपानेका प्रयत्न करते हुए कहा—संक्षेपसे कहो क्या मामला है ?

कमलाने एक-दो मिनट स्थिर भावसे रघुवीरकी ओर देखकर कहा—सच बतलाओ, आजतक तुम रेसमें कितना रुपया हार चुके हो ?

अत्यन्त विस्मयसे चकित होकर रघुवीरने कहा—कौन कहता है ?

—किसीसे सुना है, लेकिन तुम ठीक बतलाओ।

रघुवीरके माथे पर फिर विरक्तिकी रेखाएँ दीखने लगीं। उसने कुछ तीव्र आवाजसे कहा—दूसरोंकी आलोचना मैं पसन्द नहीं करता।

कमलाने पहलेकी ही तरह शान्त भावसे कहा—लेकिन तुम तो मेरे लिये गैर नहीं हो ?

रघुवीरने अपनी बात पर जोर देकर कहा—जहाँ ऐसी बातोंकी आलोचना होती है, वहाँ तुम्हारा न जाना ही अच्छा है।

कमला इसके उत्तरमें यह कहना चाहती थी, कि ये बातें मैंने जानबूझकर नहीं सुनी हैं। लेकिन रघुवीरकी बातोंकी टोनसे ठेस पाकर, उसके हृदयमें आत्मसम्मानका भाव जागृत हो उठा। उसने भी कुछ तीव्रतासे कहा—तुम्हारे साथियोंको मैं इतना हीन नहीं समझती थी, उन्हीं की जबानी........

अपनी कठोरताका उचित उत्तर पाकर रघुवीर कुछ नरम होगया। बोला—कमला, प्रत्येक मनुष्यकी आर्थिक अवस्थाका प्रकट न होना ही ठीक है। यह एक प्राइवेट मामला है। व्यापारमें कभी रुपया आता है और कभी चला जाता है।

—यह मैं खूब जानती हूँ। लेकिन दूसरोंके लिये प्राइवेटका बन्धन हो सकता हैं, लेकिन घरमें भी क्या यही विधान लागू होता है?

रघुवीरने कहा—अप्रीतिकर आलोचनासे मन खराब होता है। घर हो या बाहर, ऐसी आलोचनाओंका न होना ही अच्छा है।

कमलाके हृदयमें पतिके इस उत्तरसे बड़ी चोट लगी। वह समझ गयी, कि मुझसे सब बातें गुप्त रखना चाहते हैं।

शायद रघुवीर भी कमलाके हृदयकी इस व्यथाका आभास पा गया। इसलिये उसने कमलाके कन्धेपर हाथ रखकर स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—देखो, पागलपन मत करो, संसारमें भलाई-बुराई दोनों ही होती हैं। जानबूझकर घावके भीतर प्रवेशकर पीड़ा उत्पन्न करनेसे क्या मनमें शान्ति रह सकती है?

अभिमानसे कमलाके नेत्रोंमें आँसू आगये। उसने अपने गलेसे हीरेका नेकलेस निकालकर मेजपर रखते हुए कहा—लेकिन जिस

घावमें पीड़ा होती है, उसके छिपानेसे वह कम नहीं होती, बढ़ती ही है। यह लो इसे बेचकर कुछ दिनके लिये समाजमें अपना मुंह उज्ज्वल बनाए रक्खो।

रघुवीरने स्थिर दृष्टिसे कमलाकी ओर देखकर कहा—अर्थात् ? कमलाने शान्त स्वरसे कहा—अर्थात् बाहरी टीमटाम बनाए रखकर लोगोंका उपहास पात्र बनना मुझसे नहीं हो सकता।

रघुवीरने कुछ संकुचित्त होकर कहा—कमला तुम्हें यह मालूम होना चाहिये कि वंशपरम्परासे हमलोग कहाँ जाकर गिरेंगे, तुम्हें यह भी पता है ?

कमलाने अविचलित भावसे कहा—जानती हूँ।

रघुवीर—तो फिर ?

—हम अपना भाग्य अपने आप बना लेंगे।

रघुवीरने व्यङ्गपूर्ण स्वरसे कहा—यह जीवन छायावादियोंका काव्य नहीं है कमला, जहाँ हम सम्भव असम्भव कल्पना करके लोगोंकी वाहवाही लूट सकें। इस स्थानपर जो कड़ा मूल्य देना पड़ता है, उसके देनेकी शक्ति न तुममें है न मुझमें।

कमलाने रघुवीरकी ओर कोमल दृष्टिसे कुछ देर देखकर कहा—देखिये, आप मामलेको गलत तरीकेसे समझ रहे हैं। समाजका उपहास दो-चार दिन रहता है, उसके बाद सब ठीकठाक हो जाता है।

रघुवीरने हँसकर कहा—ऐसा नहीं हो सकता कमला, हमलोग जिस स्थानपर खड़े हैं, वहाँसे गिरनेका अर्थ है, पातालमें प्रवेश कर जाना और अनन्त अन्धकारमें समा जाना। अपने इस पागलपनको

रहने दो और नेकलेसको उठाकर रख दो। आज मि० सिंगलके यहां टी-पार्टी है, उसमें........

कमलाने सिर हिलाकर कहा—माफ करें, मैं पार्टियोंमें नहीं जाऊँगी।

रघुवीर अधीर भावसे कमरेमें घूमने लगा। कई वार दारुण क्रोधसे उसने अधर दंशन किया। फिर कमलाके सामने स्थिर होकर गम्भीर कण्ठसे बोला—सुनो कमला, इस संसारमें जिस वस्तुके एवजमें मनुष्य अपना जीवनतक विसर्जन कर सकता है, वह सम्मान है। सर्वस्व देकर भी उसकी रक्षा करनी होगी। मैं लोगोंके सामने छोटा होकर नहीं रह सकता। जैसे तुम अपने शरीरकी शोभाके लिये बढ़िया-बढ़िया साड़ी जम्पर, नेकलेस, स्नो आदिसे प्रेम करती हो, इसी तरह मैं भी इस विशाल अट्टालिका, कार, आडम्बर, साज-सज्जा और तुम्हें अपने सम्मानके लिये आवश्यक समझकर प्रेम करता हूँ। इन वस्तुओंको मैं अपने सम्मानकी सीढ़ी समझता हूँ।

रघुवीर यह कहते ही गम्भीर भावसे वहाँसे चला गया और कमला शराहत बिहङ्गिनीकी तरह एक प्रकारकी अव्यक्त यन्त्रणासे छटपटाने लगी।

(५)

रघुवीरके इस अकस्मात् होजाने वाले आत्मप्रकाशसे उसके मुंहपर अब तक सभ्यताका जो आवरण पड़ा था, वह छिन्न-भिन्न होकर नष्ट होगया। दोनों पति-पत्नीमें इस समय तक जो बंधन

था, उसके अचानक टूट जानेपर, दोनों ही लज्जितसे हो उठे। दोनों एक दूसरेसे मुंह छिपानेका प्रयत्न करने लगे।

कमलाका सुख-स्वप्न टूट चुका है। उसका पति ऐसा हृदयहीन और निष्ठुर है ? उसके लिये अचल सम्पत्ति और सचल मनुष्यमें कोई भेद नहीं है ? वे सभीको एक तरफसे अपने सम्मानके शकटमें पशुओंकी तरह जोतना चाहते हैं ? स्नेह, प्रेम और सहृदयताको वे चाँदीके टुकड़ोंसे खरीदना चाहते हैं ? ऐसे निष्ठुर पतिके धनसे खरीदे हुए अन्नका प्रत्येक ग्रास, कमलाको जहरके समान प्रतीत होने लगा। उसे मौतकी चाह नहीं, पर ऐसी स्थितिमें जीते रहना भी तो विडम्बना जनक है। क्या वह अपने गम्भीर प्रेमकी डाली हाथमें लेकर ऐसे निष्ठुरकी अभिसारिका बननेके लिये ही जीवनमें इतना आगे बढ़ी थी ? क्या पूर्णिमाकी ये हास्यमयी रजनियां, बसन्तके ये मादक पर्व, रोते-रोते ही बिताने पड़ेंगे ?

यह सब सहा भी जा सकता था, यदि वह मसूरीमें दरिद्री विनयके घरके उस क्षुद्र इतिहासको न देख पाती। लाँच्छित आत्मसम्मानके ऊपर ऐसा कठोर आघात पाकर भी वह धन-रत्नके मोहमें सब कुछ भूल सकती थी, यदि विनयका वह प्रेम निर्भर भाव उसके सामने न आया होता। एक दिन अपने पतिके साथ उसने भी विनयकी हँसी उड़ानेमें योग दिया था, लेकिन सहृदयता बार-बार उसके कानोंमें कहती रहती थी, कि विनयके प्रेममय संसारमें नुक्ताचींनी करने योग्य दृष्टि तुम्हारे पास नहीं है। झूठ-मूठ हँसकर किसी उच्च भावका असम्मान करना ठीक नहीं है।

अब कमलाको प्रतीत होने लगा, कि यह सत्य है, बल्कि कठोर सत्य है। आज दिन कमलाके पास वैसा ही टूटा फूटा मकान होता, वह उसमें मैलीसी चारपाईपर रुग्ण होकर पड़ी होती और रघुवीर उसके सिरहाने बैठ उसके नेत्रोंसे अपने नेत्र मिलाकर, अविचलित भावसे सेवा करता, तो शायद आज हृदयमें जो जगह खाली हो गयी है, वह किसी ऐसे भावसे भरी होती, जिसके प्राप्त करनेकी अपने जीवनमें प्रत्येक प्राणी आकाँक्षा करता है।

सोचते-सोचते कमलाका सिर झनझना उठा। न जाने कितनी देर वह बेहोश पड़ी रही। जब उसे होश आया, तो दास-दासियोंको अपनी सेवामें लगा देखकर वह जमीनमें गड़सी गयी, उनके सामने आँख उठाकर देख भी न सकी। कमलाने इशारेसे सबको विदा कर दिया और आप तकियेमें मुंह छिपाकर रोने लगी।

इसके बाद इसी प्रकार कमलाके दिन बीतने लगे।

रघुवीर दिनरात व्यस्त रहता था। अप्रसन्न भाग्यलक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपना सर्वस्व दावपर लगा दिया। लेकिन उसकी भाग्यलक्ष्मी अलक्ष्य भावसे उसकी हरकतों पर हँस रही थी। कमला उससे कुछ दूर रहने लगी थी, इसलिये उसका अभाव वह बाहरसे पूरा करना चाहता था। वह कमलाको यह दिखाना चाहता था कि मुझे किसीकी परवा नहीं है, लेकिन उसके घरमें जो आग जल रही थी, धीरे-धीरे वह बढ़ती ही रही और एक दिन ऐसा आ पहुंचा, जब हवाके साधारणसे झोंकेसे वह प्रज्ज्वलित हो उठी और उसमें रघुवीरकी अवशिष्ट सम्पत्ति जलकर स्वाहा हो गयी।

और सब मामलोंमें तो 'यह कुछ नहीं है' कहकर काम चलाया जा सकता है, पर लेनदार ऐसे नहीं होते जो इस वाक्यसे धोखेमें आजायँ। उस दिन रघुवीरके नेत्रोंमें खून उतर रहा था, इसी भावसे वह अपने घर पहुंचा। प्रज्ज्वलित शिखा बुझ चुकी थी। अब क्या रक्खा है ? बस, यहीं जीवन नाटककी यवनिका गिर जानी चाहिये।

दृढ़ निश्चय करके रघुवीर तीसरी मँजिलके एक कमरेमें घुस रहा था, कि सामने कमला मिल गयी।

रघुवीरने चौंककर पूछा—कौन है ?

ठीक है, कमलाका न पहचाना जाना ही उचित है। पिछले कुछ दिनोंमें ही वह ऐसी प्रतीत होने लगी थी, मानों कई दशाब्दियाँ उसके ऊपरसे गुजर चुकी हैं। चेहरा रूखा सूखा पड़ा था, बाल उलझे हुए थे। वह उज्ज्वल गौर वर्ण, वे चपल नेत्र, जो क्षण-भर भी एक स्थानपर न रुकते थे, आज कहाँ हैं ? उसके पीले मुंहसे एक प्रकारकी ग्लानि, एक तरहकी उदासी और एक प्रकारका वैराग्य टपक रहा था। यौवनके समाप्त होनेपर जो बुढ़ापा धीरे-धीरे आकर मनुष्यमें सौम्यता और गम्भीरता ला देता है, उसी अकाल वार्द्धक्यसे कमलाका सारा शरीर शीर्ण हो रहा था।

अपने प्रश्नका उत्तर न पाकर रघुवीरने घबड़ाकर फिर पूछा—तुम कौन हो ?

कमलाने कहा—पहचानते नहीं, मैं कमला हूँ।

एक मामूली-सी चिल्लाहटके बाद रघुवीर दीवारसे लगकर खड़ा हो गया, नहीं तो शायद गिर पड़ता। यह देखकर कमलाके मुंहपर

मुस्कराहटकी एक पतली-सी रेखा प्रकट हो उठी। बोली—क्या मुझसे डर गये ?

रघुवीरने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—नहीं, डरता तो मैं किसीसे नहीं हूँ कमला, भयको दूर करनेका मन्त्र मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

कमलाने व्यथित दृष्टिसे पतिकी ओर देखकर कहा—ऐसे बेमौके ऊपर क्यों जा रहे हो ?

रघुवीरने कहा—मेरे लिये मौका-बेमौका क्या है ? तुमने शायद सुना है या नहीं, कि इस मकानपर मेरा अधिकार केवल आज भर है।

कमलाके मुंहपर विस्मयका भाव आ गया। पूछा इसके बाद ?

रघुवीरने सूखी हँसीके साथ कहा—इसके बाद ? यह तो तुम जानती ही हो कि मैं प्रारब्ध-वादको नहीं मानता, इसलिये मुझे स्वयं ही इसका उपाय करना होगा।

कमलाने भीतर ही भीतर घबड़ाकर कहा—क्या उपाय करोगे ?

कमलाके मलिन मुखकी ओर देखकर रघुवीरने कहा—लेकिन तुम्हारे मुंहकी ओर देखकर मेरा संकल्प शिथिल होता चला जा रहा है कमला ! यह घर-द्वार, धन-दौलत स्वप्नराज्यकी तरह अस्तित्व-हीन हो गये हैं, पर तुम्हारे प्रति मेरा जो कर्त्तव्य है, वह अभीतक बना हुआ है।

इस समय कमलाके नेत्रोंमें आँसू आकर इकट्ठे हो चुके थे। उसने दूसरी ओर मुंह फेरकर कहा—तुम्हें मेरी चिन्ता न करनी होगी।

रघुवीरने सूखी हँसी-हँसते हुए कहा—हाँ, यह बात तुम कह सकती हो कमला! एक दिन ऐसा था, जब मैं तुम्हें भी इस घर-द्वारके बराबर समझता था। ऐसा क्यों समझता था, यह भी तुम्हें मालूम है। लेकिन इतनेपर भी मैं इन वस्तुओंको अपने पास न रख सका। आज घरसे बाहर मुंह दिखाना भी कठिन हो गया है।

यह कहते-कहते रघुवीरका गला भर आया। उसने कमलाका हाथ पकड़कर कहा—आओ, तुम्हें सब घटना सुनाता हूं।

रघुवीरके आचरणसे कमला कम विस्मित नहीं हुई। ठीक एक वर्ष बाद, धन-दौलतके परदेसे बाहर निकलकर आज रघुवीरने कमलाका हाथ पकड़ा है। उस कर स्पर्शसे, मानवी कमलाके हृदयका अभिमान क्षणमात्रमें ही अन्तर्हित हो गया।

तीसरी मँजिलके कमरेमें आमने-सामने कुरसी बिछाकर दोनों पति-पत्नी बैठ गये। सड़ककी ओरकी खिड़कियाँ बन्द थीं, कमलाने उन्हें खोलना चाहा, पर रघुवीरने रोक दिया। आज रघुवीरमें आलोकित प्रकृतिको सहनेकी शक्ति न थी।

बहुत देरतक चुप रहनेके बाद, रघुवीरने कमलाकी ओर देखकर गम्भीर स्वरसे कहा—कमला, अपने सम्मानकी रक्षाका अब भी एक मार्ग है। मेरा विचार तुम्हें कुछ बतलानेका न था, पर देखता हूं, बतलाये बिना काम न चलेगा। अग्निकी लपटोंमें हाथ देनेपर मनुष्यकी इच्छाके बिना भी हाथ जल जाता है, क्योंकि अग्निका धर्म ही जलाना है। हमारे जीवनमें अब ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो जलनेसे रह गयी हो। इसलिये मैंने जीवनभरमें कभी जो अधिकार तुम्हें नहीं दिया,

आज जीवन-पथके अन्तिम छोरपर पहुँचकर, वही अधिकार तुम्हें देनेके लिये तुम्हारा हाथ पकड़ना चाहता हूं।

अब हमें एक नये मार्गसे चलना होगा। हमारे जीवनकी प्रिय वस्तुओंकी भस्म-राशि पर उस पथकी क्षीण रेखा दीख रही है। तुम्हारे हृदयमें उस मार्गपर चलनेका साहस है?

कमलाने स्निग्ध दृष्टिसे पतिकी ओर देखकर कहा—तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझमें कुछ नहीं आता।

रघुवीरने जेबसे एक छोटी-सी शीशी निकालकर मेज पर रखते हुए कहा—केवल यही मार्ग है! इस पर चलनेका तुममें साहस है?

कमला भयके मारे चिल्लाना ही चाहती थी, कि रघुवीरने उसे रोककर कहा—चुप! यह विष है! क्या तुम डर गई हो?

कमलाने काँपती हुई आवाजसे कहा—भय! डर!

रघुवीरने कहा—बस, तब तो ठीक है। आओ, इस अमृतको पीकर............

कमलाने पतिका हाथ पकड़कर दृढ़ कण्ठसे कहा—लेकिन इस प्रकार जीवन नष्ट करनेसे लाभ? तुम जिस सम्मानकी रक्षाके लिये यह दुःसाहस करना चाहते हो, मालूम है, हमारे मरनेके बाद उसकी क्या दशा होगी? यह कलंक-कहानी घर-घरमें............

—परन्तु उसे सुननेके लिये हम उस समय उपस्थित नहीं होंगे कमला! मैं लोगोंकी जीभसे जितना डरता हूँ, उससे बहुत अधिक अपने कानोंसे डरता हूँ। असम्मान और उससे उत्पन्न ज्वाला इनके द्वारा ही हृदयमें प्रवेश करती है।

फिर शीशीको हाथमें लेकर कहा—यदि यह मार्ग बन्द होजाय, तो फिर और किसका डर है ?

कमलाने बड़ी फुर्तीसे रघुवीरके हाथसे शीशी छीनकर कहा—यह मार्ग डरपोक और कायर पुरुषोंके लिये है। मसूरीके अपने उस मित्रकी याद है ? उसकी दुःख सहिष्णुताकी बातपर एक दिन हमलोग खूब हँसे थे, परन्तु तब हमें मालूम नहीं था कि वास्तविक मनुष्यत्वका स्थान कल्पित सुख-दुःखोंसे बहुत ऊपर है। हमारी उस हँसीसे आपके मित्रकी तो कोई हानि नहीं हुई, पर हम उस आत्म-प्रतारणासे बहुत कुछ खो बैठे हैं।

रघुवीरने सिर हिलाकर कहा—तुम चाहे जो कुछ कहो या समझो कमला, परन्तु उस तरहका जीवन बितानेकी अपेक्षा—

कमलाने पतिकी बात काटकर कहा—'मर जाना ही अच्छा है।' यही कहना चाहते हो न ? देखिये जीवित रहनेकी आकाँक्षा केवल बड़े और अमीर आदमियोंके लिये ही रिजर्व नहीं है। तुम्हारे महलके चारों ओर जो छोटे-छोटे और टूटे-फूटे झोपड़े हैं, जरा इनकी ओर तो देखो, इनमें भी जीवनकी सरिता प्रवाहित हो रही है।

—यह ठीक है, लेकिन इन्होंने उच्चतम सुखका स्वाद नहीं पाया है, इसीलिये ये लोग अबतक बचे हुए हैं। हमलोगोंका काम इस प्रकार जीवित रहनेसे नहीं चल सकता। लाओ शीशी दो।

कमलाने अपने पासकी खिड़की खोलकर शीशीको बहुत जोरसे नीचे फेंक देनेके बाद कहा—प्रलोभन बड़ी भयानक वस्तु है, इसपर जय प्राप्त करना ही सच्चा मनुष्यत्व है।

रघुवीरने हताश भावसे कहा—हाय, तुमने यह क्या कर डाला ? कल सुबह मैं लोगोंको मुंह कैसे दिखाऊँगा ?

—इसकी व्यवस्था मैं स्वयं करूँगी। इतने दिनतक जिस वस्तुको बनाए रखनेके लिये इतना आडम्बर किया हुआ था, क्या अब भी तुम्हारी समझमें नहीं आया, कि वह केवल मिथ्याके सिवा और कुछ नहीं था ? यदि हमारा रत्ती-रत्ती सामान भी चला जाय, तो भी कोई हर्ज नहीं, लोग यह तो नहीं कहेंगे कि तुम सफेद लिबासमें पक्के लुटेरे हो, चोर हो, डाकू हो। हमारा रुपया मार लिया, हमें यह धोखा दिया, हमारे साथ ऐसा फरेब किया, हाँ यह कह सकते हैं, कि तुम गरीब हो गये:हो, सो इसमें अप्रतिष्ठाकी कोई बात नहीं है।

रघुवीर कुरसीसे उठकर कमरेमें घूमने लगा और बार-बार अपने माथेको हाथसे दबाने लगा। फिर अचानक कमलाके सामने खड़े होकर बोला—यह मैं मानता हूं, दरिद्रता हमें सब कुछ लौटा देगी। हम एक दूसरे समाजमें सिर ऊँचा करके रह सकेंगे, लेकिन कमला धनके पीछे जो वस्तु छिपी हुई थी, वह धनके साथ ही चली गयी।

कमलाने शान्त स्वरसे कहा—सम्मान या प्रतिष्ठाकी बात कह रहे हो ?

रघुवीरने अधीर भावसे कहा—नहीं, अपनी बात कह रहा हूँ। हम लोगोंने धनके मदमें अन्धे होकर परस्परको नहीं पहचाना। यह नहीं समझा कि संसारमें हृदय नामका भी कोई पदार्थ है, जिसके प्राप्त होनेपर और सब वस्तुएँ फीकी जँचने लगती हैं।

—ठीक है, अब तो सारा जँजाल दूर हो गया है।........

कमलाकी ओर करुणदृष्टिसे देख, रघुवीरने कातर कण्ठसे कहा—उसके साथ-ही-साथ हृदयकी सम्पति भी नष्ट होगयी है। इस समय मैंने रत्नको पहचान तो लिया है, पर हाथ बढ़ाकर उसे उठानेमें सङ्कोच हो रहा है। एक वर्ष पहले तुम जो कमला थी, अब वह नहीं रही। इस एक ही वर्षमें मालूम होता है, तुम्हारी उम्र बीस वर्ष और बढ़ गयी है।

सामने आदम क़द आइना लगा था, खिड़कीके पल्ले खुले हुऐ थे। आइनेमें अपने अकाल वार्द्धक्यसे पीड़ित शरीरको देखकर कमला एकाएक चिल्ला उठी।

ठीक तो है! कमलाकी वह भुवन-विजयिनी यौवन-श्री आज कहाँ है? भ्रू-विलासमें वह मादकता कहाँ है। ऐश्वर्यकी गौरवमयी पताकाके नीचे जो यौवन-लीला नित्य नये आनन्दकी सृष्टि किया करती थी, आज वह अकाल वार्द्धक्यके गहरे अन्धकारमें डूब गई है, दुःख समष्टिकी प्रबल आँधीमें उड़ गयी है।

दरिद्रतामें गौरव है, एक क्षण पहले कमला इस पर विश्वास करती थी, लेकिन आइनेमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसका यह विश्वास एकदम नष्ट हो गया। उसके हृदयमें हाहाकारकी आँधी चलने लगी।

पथभ्रान्त पथिक आज मरुभूमिके बीचमें खड़ा है। दोपहरका तपता हुआ सूर्य उसके सिरपर है, आगकी तरह जलता हुआ बालू उसके पैरोंके नीचे है। ऐसी दशामें जीवनको बचाये रखनेकी लालसा

को दुःखसहिष्णुताकी परीक्षाके सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता। इस व्यर्थ जीवनकी रक्षाका आयोजन करनेसे क्या लाभ है? जो नष्ट होगया है, हाथसे छूटकर चला गया है, उसका अन्तिम चिन्ह भी नष्ट हो जाना ही ठीक है।

कमला रोती हुई खिड़कीके पास आकर खड़ी होगई और सतृष्ण दृष्टिसे थोड़ी देर पहले फेंकी हुई शीशीकी ओर देखने लगी। फिर दोनों हाथोंसे मुंह ढाँक खुलकर रोने उठी।

इस क्रन्दन-ध्वनिने रघुवीरके हृदयपर जोरका आघात किया। वह धीरेसे कमलाके पास आकर खड़ा हुआ और उसके कन्धेपर हाथ रखकर स्निग्ध स्वरसे बोला—अतीतके लिये परिताप करनेसे कोई लाभ नहीं है कमला, जो चला गया है वह लौटकर नहीं आ सकता।

कमलाने व्याकुल दृष्टिसे पतिकी ओर देखकर कहा—यह मैं जानती हूं, लेकिन तुम्हें मेरी कसम है, वह शीशी उठाकर ला दो।

रघुवीरने म्लान मुखसे कहा—अभी थोड़ी देर पहले तो तुम मेरे इसी विचारको जीवनकी भूल बतला रही थी, और अब उसे ही स्वीकार करना चाहती हो? कमला आजतक हम लोगोंने जो चाहा सो प्राप्त किया है। उसे बिना समझे ही चाहा है और पानेके बाद भी ठीक तरह पहचान नहीं सके कि हमें क्या चाहिये था। मेरी ओर इस प्रकार न देखो, सच कहता हूं, इससे मुझे कष्ट होता है। क्या विनयकी बात इतनी ही देरमें भूल गयी?

कमलाने व्यथित भावसे पतिकी ओर देखकर कहा—नहीं, भूली तो नहीं हूँ।

रघुवीरने कहा—उसकी स्त्री कुरूपा थी फिर भी विनय किस निर्भरतासे उससे प्रेम करता था। उस वक्त हम लोग उसे हँस रहे थे, अभी थोड़ी देर पहलेही तो तुमने यह दृष्टान्त दिया था।

कमला चुप रही। रघुवीरने फिर कहा—हम लोगोंके लिये भी यही रास्ता खुला है। जहाँ दो हृदयोंका एकीकरण होता है, वहाँ सम्पत्ति मनपर प्रभाव नहीं डाल सकती। चलो, उसी स्थान पर हम लोगोंके लिये आसन बिछा हुआ है, हम दोनों उसी आसनपर बैठकर बाकी जीवन बिताएँगे।

कमला रघुवीरकी छातीसे लगकर रोने लगी। रघुवीर अश्रु प्लावित नेत्रोंसे आकाशकी ओर देखने लगा। अचानक कमलाने दृढ़ स्वरसे कहा—नहीं, मरनेकी आवश्यकता नहीं है। हम लोग प्रलोभन पर विजय प्राप्तकर अपने मनुष्य होनेका प्रमाण छोड़ जायँगे। क्या दरिद्रतामें गौरव-मुकुट प्राप्त नहीं होता?

रघुवीर अभी तक आकाशकी ओर देख रहा था और उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी।

निर्वाण की ओर

(१)

बात बहुत दिनकी है, प्रायः दो हजार चार सौ वर्ष पुरानी। कुशीनगरसे पन्द्रह कोस दूर, मिलिन्दा नामक गाँवमें अरुणा और उदयन रहते थे। दोनों बचपनके साथी थे। अरुणा असामान्य सुन्दरी थी, अङ्ग-अङ्ग लावण्यसे भरा था, चाल मतवाली थी, मुंहपर हरवक्त हँसी बनी रहती थी। उदयन धीर और शान्त था। उसके मुंहपर असीम शान्तिकी छाया फैली रहती थी। नेत्र स्वप्नमय थे, मानो अनन्त विश्वके अन्ततक पहुंचना चाहते हों।

अरुणा चपल और कौतुक-प्रिय थी। प्रातःकालके समय वह जब अपनी सखियोंके साथ, हँसीकी छटा और आनन्दके कलरवसे, प्रमोद काननको मुखरित कर डालती थी, उस समय उदयन, अपनी उदासीन दृष्टिसे प्रत्येक वृक्षके नीचे न जाने क्या ढूंढ़ता फिरता था। अरुणा दौड़कर उसका हाथ पकड़ लेती और अपनी मण्डलीमें ले आती। उदयनका ध्यान सखियोंके हँसीके फव्वारेसे भङ्ग होता। अरुणा हँसकर कहती—'कहिये कविजी!'

सखियाँ अपनी हँसीसे उस प्रमोद काननको गुँजाते हुए कहतीं 'कहिये संन्यासी जी महाराज!'

अपरान्हके समय अरुणा अपनी सखियोंके साथ वीणा बजाती और गाती थी। उसका मोहक और मधुर गान सुनकर रास्ते चलते आदमी खड़े होजाते, काननके पक्षी अपने स्वाभाविक गानको भूल जाते, सूर्यदेव लज्जासे लाल होकर दिगन्तमें छिप जाते और वायु मुग्ध होकर अपनी गति भूल जाता। उदयन ऐसे समय खिड़कीके पास जाकर बैठ जाता। रास्तेकी ओर देखते-देखते उसके नेत्र जलसे भर आते।

अरुणा उसके पास आ और कन्धेपर हाथ रखकर पूछती—'कहिये प्रेमिक कविजी !'

सखियाँ तानेसे कहतीं—'ऐसा मधुर गान सुनकर, द्वितीय बुद्ध बड़े कातर हो रहे हैं !'

जिस दिन वे लोग इसी तरह समय व्यतीत करते हुए कैशोर और यौवनके सन्धिस्थलमें आ पहुंचे, तब अरुणा और भी अधिक चञ्चल और रसिका हो उठी। उसके शरीरका रूप-लावण्य ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों अपने कैदखानेको तोड़कर बाहर निकला पड़ता हो, कण्ठस्वर और भी मधुर हो गया। उसके रूप और गायनकी ख्याति देश-विदेश सभी जगह फैल गयी।

इधर उदयन किसी गम्भीर स्वप्नमें मग्न होगया। महाशून्यकी ओर उसकी टकटकी बन्धी रहती। हृदय न जाने किस अज्ञात वेदनाके भारसे अशान्त रहता। परन्तु मुंहपर स्निग्ध शान्तिकी ज्योति और भी अधिक स्पष्ट होगयी।

(२)

जिस समयकी घटनाका हम उल्लेख कर रहे हैं, उससे आधी शताब्दी पहले बुद्ध भगवान निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। उसवक्त उनका धर्म क्रमशः प्रसारित हो रहा था। सैकड़ों हज़ारों नागरिक अपने सुख-सौभाग्यको लात मारकर दुखी और आर्तजनोंकी सेवाके लिये, बढ़े चले जा रहे थे।

एक दिन अचानक उदयनके मुंहपर हँसीकी रेखा दिखाई दी। यह अपना घर छोड़ गेरिक वस्त्र धारण कर धर्म और बुद्धके नामपर चलनेको तैयार हो गया। यद देखकर अरुणा अपने विस्मित नेत्र, अपूर्व हास्यको लेकर उसके सामने जा खड़ी हुई। पूछा—'कहोजी, यह कैसा वेश बनाया है ?'

उदयने सिर्फ यही कहा— बुद्धं शरणं गच्छामि !'

उदयन चला गया। अरुणा जैसी की तैसी खड़ी रह गई। उसकी हँसी रुक गई। चुपचाप वह अपने घर लौट आई।

इसके बाद अरुणा वन्धनहीन होगई। नृत्यकला सीखनेके लिये राजधानीमें पहुंची। थोड़े ही दिनमें उसके नृत्य-गीतकी ख्याति चारों ओर फैल गई। प्रतिदिन न जाने कितने सेठ-साहूकार वीर और विद्वान् पुरुष उसके दरवाजे पर पहुंचते थे। उपहारमें मिले हुये रत्न और आभूषणोंसे उसका घर भरने लगा। लोग उसका रूप निहारकर, गाना सुनकर और नृत्य देखकर पागलसे हो उठते। अरुणाको मुग्ध करनेके लिये धनीमानी लोगोंमें बाजी लगती। सब एक दूसरेसे

बढ़िया भेंट लेकर पहुंचनेका प्रयत्न करते। वीर लोग उसके पास बैठ और अपनी वीरताकी कहानी सुनाकर अरुणाका हृदय जीतना चाहते। इसी तरह कुछ दिन बीत जानेपर अरुणाका यश राज-प्रासादमें जा पहुँचा।

(३)

दस वर्ष बादकी बात है। उदयन भिक्षा-पात्र हाथमें लिये देश विदेशोंमें बुद्ध भगवान्के उपदेशोंका प्रचार करता फिरता है। शान्त और धीर स्वभाव तथा ज्ञानकी महिमाके कारण उसको तितिक्षा मठका अध्यक्ष बना दिया गया था।

एक दिन वह भीख माँगनेके लिये राजधानीमें गया। भिक्षापात्र हाथमें लिये, रास्ता चलते हुए उसने देखा, कि एक बड़ा भारी जलूस सामनेसे आ रहा है। उत्सुक उदयनने राजधानीके एक भिक्षुकसे पूछा—"भाई, यह जलूस कैसा है ?"

उत्तर मिला—"महाराज बसन्तोत्सवके उपलक्षमें, राजनटी अरुणाके उद्यानमें जा रहे हैं।"

उदयनने विस्मित होकर पूछा—"राजनटी अरुणा ? यह अरुणा कौन है ?"

"वह एक असामान्य सुन्दरी और नाचने गानेमें अत्यन्त पारदर्शी है। मिलिन्दा गाँवके किसी सेठकी लड़की है।"

यह सुनकर उदयनका मन न जाने क्यों व्याकुल हो उठा। वह भिक्षाके लिये आगे न बढ़ सका और मठकी ओर चल पड़ा। सारे

रास्ते उसका मन उदास रहा और ध्यान न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा।

शामके वक्त स्नान करके वह बुद्धकी मूर्तिके सामने प्रार्थना किया करता था। उसदिन प्रार्थनामें भी मन नहीं लगा। रह-रहकर बाल्य-सखी अरुणाका ध्यान आ रहा था। वह आज नगरकी नटी है। वह घुटने टेककर प्रार्थना करने लगा—"क्षमा करो प्रभु, यह चिन्ता मेरे हृदयसे दूर करो !"

अगले दिन अपने मनको शुद्ध करनेके लिये उसने उपवास किया। प्रात:काल स्नान करके एकान्तमें बुद्ध मूर्तिके सामने जा बैठा। परन्तु उसका अबाध्य मन बार-बार मिलिन्दामें अरुणाके पास भागा जा रहा था। वही अरुणा आज नगरकी नटी है, पाप-पङ्कमें डूबी हुई। नगरको उसने कलुषित कर डाला है और नरककी ओर दौड़ी जा रही है ! उदयनका हृदय व्यथासे जला जा रहा था। करुणापूर्ण दृष्टिसे उसने मूर्तिकी ओर देखा। उसको प्रतीत हुआ मानो, बुद्ध भगवान् कह रहे हैं—"अरुणाका तुम उद्धार करो, उसको निर्वाणकी ओर ले जाओ।" बुद्धके चरणोंमें लोटकर उसने कहा—"हे भगवन्, भिक्षुकके जीवनमें ऐसी व्यथा क्यों उत्पन्न की है ?"

अगले दिन उदयनने फिर उपवास किया। सोचा, मनमें चञ्चलता आगई है। इसको कठोर दण्ड देना चाहिये। बुद्धकी मूर्ति उसकी इस प्रगल्भता पर मानों हँसने लगी। उदयन गम्भीरता पूर्वक फिर सोचने लगा। उसके मनमें आता था, कि अरुणाका उद्धार करना उसका कर्त्तव्य है। मुझे उसको पाप-पङ्कसे निकालकर उसका भविष्य उत्तम

बनाना चाहिये। मैं भिक्षु हूं, दुखीको सान्त्वना देना और पापीका उद्धार करना ही मेरा काम है। दिन भर वह बुद्ध भगवान्के चरणोंमें बैठा प्रार्थना करता रहा,—"मुझे शान्ति दीजिये भगवन्! शक्ति दीजिये और अरुणाका उद्धार कीजिये।"

अगले दिन प्रात:काल भिक्षापात्र हाथमें लेकर बाहर निकला। गाँवके गाँव पीछे छोड़ता हुआ दोपहरके समय राजधानीमें आ पहुंचा और राजमार्गमें चलता हुआ कहने लगा - 'बुद्धं शरणं गच्छामि सङ्घं शरणं गच्छामि।"

गृहस्थ लोग भीख लेकर दरवाजेपर आते, उदयन फिर आगे बढ़ता, अन्तमें अरुणाके दरवाजेपर जाकर रुक गया। पहरेदारने भीतर जाकर कहा—"मठाध्यक्ष भिक्षाके लिये दरवाजेपर खड़े हैं।"

अरुणाने बाहर आकर देखा, दरवाजेपर उदयन खड़ा है। क्षण-भरके लिये उसके नेत्रोंमें बिजली चमकी, पर अगले ही क्षण उसके मुंहपर न जाने कैसी छाया आ घिरी। उसने हँसकर कहा—"उदयन, यह क्या बात है? इतने दिन बाद मेरे दरवाजेपर आए हो!"

उदयनने कहा—"मुझे भिक्षा चाहिए।"

"मेरे पास भिक्षा लेने आये हो!"

अरुणा हँस पड़ी। फिर उदयनका हाथ पकड़कर बोली—"यहाँ क्यों खड़े हो, भीतर चलो।"

उदयनको भीतर लेजाकर अरुणाने अपने कमरेमें बैठाया। घरकी साज-सज्जा और विलास भावनाका बाहुल्य उदयनको पीड़ा पहुँचाने लगा। उसने मन ही मन बुद्धको स्मरणकर कहा—"क्षमा करो प्रभु!"

अरुणाने उदयनकी ओर देखकर कौतुकसे पूछा—"मेरे पास किस वस्तुकी भिक्षा लेने आए हो उदयन ? मेरे रूपकी या मेरे ऐश्वर्यकी ? या दोनोंकी ?"

उदयनने कहा—"नहीं अरुणा, तुम श्रेष्ठ बनो, अच्छी बनो और इस पाप-पंथको छोड़ दो।"

"अच्छी बनूं ?" अरुणा हँसते हुए लोट-पोट हो गयी। कहा—"क्यों मुझे क्या दुःख है ? तुम भिक्षु हो, अच्छे होनेकी बात तुम क्या समझ सकते हो उदयन ? अपना यह रूप, कण्ठ, नृत्य और ऐश्वर्य क्या तुम्हारी तरह एक अनिश्चित वस्तुकी आकाँक्षामें नष्ट कर डालूं ?"

"लेकिन तुम अवनतिकी अन्तिम सीमापर जा पहुँची हो। तुम्हारी यह जीवन-यात्रा मङ्गलजनक नहीं है। यह तुम्हें क्रमशः पाप-पंथकी ओर ले जा रही है—तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरको कलुषित कर रही है। मैं प्रार्थना करता हूँ अरुणा, अब तुम इस रास्तेसे वापस आ जाओ।"

यह कहकर उदयन स्थिर—कण्ठसे बुद्धका अमृतमय उपदेश, उनकी वाणी, निर्वाणका महत्त्व और उसका उज्ज्वल दृश्य उसके सामने चित्रित करने लगा। अरुणा सुनते-सुनते ऊब उठी। कहा—"एक गीत सुनोगे उदयन ?"

"हम लोग भिक्षु हैं, हमें गीत सुननेका अधिकार नहीं है।"

"मैं यह जानती हूं किन्तु मैं तुम्हारी बाल्य-सखी हूं ! मेरी एक भी बात नहीं मानोगे ?"

अरुणाने गाना शुरू किया। आज उसका मीठा कण्ठ और भी मीठा हो उठा। उदयन उस वेदना मिश्रित स्वरसे निश्चेष्ट-सा हो गया। गीतका भाव था, न जाने किसकी आशामें इतने दिन काटे हैं, किसीने उसके हृदयको कष्ट पहुँचाया है। उसके जीवनका ध्रुवतारा खो गया है। वह किसी अनिर्दिष्टकी ओर जा रहा है और उसका अन्त कहाँ होगा, यह बात वह स्वयं ही नहीं जानता।

गीत समाप्त होते ही अरुणा स्थिर-दृष्टिसे उदयनकी ओर देखने लगी।

उदयनने कहा—"मुझे वचन दो अरुणा! कि तुम अच्छी बनोगी, मैं अब जा रहा हूँ!"

"क्यों? जा क्यों रहे हो? तुम तो भिक्षु हो, आज मेरे अतिथि बनकर मेरी सेवा ग्रहण करो।

"उदयन, तुम मेरा पाप-पंकसे उद्धार करने आए हो, पर इतनी दूर रहते हुए क्या किसीका उद्धार किया जा सकता है? मेरी सेवा ग्रहण नहीं करोगे, सिर्फ इसलिये, कि मैं पापिनी हूँ?"

"नहीं, यह बात नहीं है।"

"फिर?"

उदयन वहाँसे लौट नहीं सका। अरुणाका अतिथि बनकर उसकी भिक्षा ग्रहण की। उसका मन बड़ा चंचल हो रहा था, इसलिये वह बार-बार बुद्ध भगवान्से प्रार्थना करता रहा—"भगवन्, मुझे शक्ति दो।"

अरुणा उस दिन उदयनकी सेवा करती रही, राज-सभामें जाना नहीं हो सका। शामके वक्त वह उदयनके पास आकर बैठी। वृद्धका स्मरणकर उदयन उनके मधुर उपदेश अरुणाको फिर सुनाने लगा। आध्यात्मिक जीवनका उत्कर्ष, धर्म-हीन जीवनकी अशान्ति, इसी तरह न जाने क्या-क्या कह डाला। अन्तमें अरुणाकी ओर कातर नेत्रोंसे देखने लगा।

अरुणाके नेत्रोंमें न जाने कैसी दिप्ति खेल गयी। उसने मधुर कंठसे पुकारा—"उदयन!"

उदयनने सिर उठाकर देखा। अरुणाने कहा—"तुम अपनेको अच्छी तरह नहीं समझ सके हो। उदयन, अपने आत्माके साथ तुम यह छल क्यों करते हो?"

उदयनने व्याकुल होकर कहा—"क्यों?"

"आज मन स्थिर करलो, कल इसका कारण सुनना।"

उदयन अगले दिन भी मठमें नहीं जा सका, दिनभर अपने कमरेमें रहा। बार-बार वृद्धका ध्यानकर गम्भीर स्वरसे कहता—"मैं अरुणाका उद्धार करूँगा, उसकी मलिनता नष्ट कर डालूंगा, मुझे आप शक्ति दें प्रभो, जिससे मैं सफल हो सकूं।"

सारा दिन प्रार्थना करते बीता, पर उसका मन चंचल हो रहा था। रह-रहकर अरुणाकी छवि उसके नेत्रोंके सामने आकर खड़ी हो जाती थी।

शामके वक्त अरुणाने आकर दरवाज़ा थप-थपाया। उदयनने दरवाजा खोलकर कहा—"आओ।"

अरुणाने कहा—"नहीं यहाँ नहीं।"

उदयनको लेकर अरुणा अपने कमरेमें आई। वहाँका सौन्दर्य देखकर उदयन विस्मित हो उठा। कमरा अपूर्व साज-बाजसे सज्जित हो रहा था, चारों ओर पुष्पोंका सौरभ फैल रहा था। उदयनका शरीर काँप उठा। वह मन ही मन बुद्धका स्मरण करने लगा।

अरुणाने कहा—"उदयन, मेरी ओर देखो।"

उदयनने आँख उठाकर देखा। उसकी शान्त दृष्टि आज घड़ी-घड़ी न जाने क्यों चंचल हो रही थी।

उसने विचलित कंठसे कहा—"मुझे वचन दो अरुणा।"

"वचन ? हाँ, दे सकती हूं, यदि तुम घरकी ओर लौट आओ। उदयन तुम अन्धे हो, इसीलिये उस दिन भिक्षा-पात्र हाथमें लेकर घरसे निकल पड़े थे। अब लौट जाओ और अपने आत्माके साथ छल मत करो। अरुणा कितनी ही कलुषित क्यों न हो, तुम्हें पाने पर इस घृणित जीवनको छोड़ देगी और फिर मिलिन्दामें जाकर रहने लगेगी। अब अधिक कष्ट मत दो। अपने आत्माके साथ और कितने दिनतक प्रतारणा करते रहोगे ? आत्माको कष्ट देनेसे कोई लाभ नहीं है। ये गैरिक वस्त्र छोड़ दो, चलो हम लोग फिर मिलिन्दाकी उस श्यामल छायाके नीचे चलकर बैठें।"

उदयन चंचल हो उठा। उसने व्याकुल कंठसे कहा—"नहीं अरुणा, तुम्हारा यह गृहस्थ जीवन, इन्द्रिय सुख-भोगका यह जीवन कितना मिथ्या और क्षणस्थायी है, यह तुम नहीं समझती। बुद्धके उपदेशोंका तुम्हें ज्ञान नहीं है।"

अरुणाने हँसकर कहा—"नहीं उदयन यही सत्य है, शायद बुद्धने इसको ठीक तरह समझा हो, पर तुम गलत समझ रहे हो। आओ घर लौट चलें।"

"गलत समझा है? तुम क्या पागल हो गयी हो अरुणा?"

यह कहकर उदयन बाहर जाने लगा। अरुणाने उसका हाथ पकड़ लिया। उदयन अरुणाकी ओर देखने लगा। अरुणाने कहा—"तुम मेरे अतिथि हो, इस रात्रिके समय कहाँ जाओगे। आज और रहो, मनको स्थिर करो, कल चले जाना।"

उदयन अपने कमरेमें आकर जमीनपर लेट गया। अब बुद्ध भगवान्की मूर्ति उसके स्मृति-पटपर नहीं आती थी, उनकी वाणी भूल गया था। वह व्याकुल होकर केवल यही कह सका, कि—"प्रभो, मेरे हृदयमें शक्तिका संचार करो, अपना भिक्षा-पात्र हाथमें लेकर, लोगोंके दरवाजे-दरवाजे घूमने दो! अरुणाका उद्धार करो।"

अरुणाने चिन्तित मनसे अपने कमरेका स्वर्ण-दीपक जलाया और मन ही मन कहा, उदयन सचमुच अन्धा है।

सुबह उठकर अरुणाने देखा, कि उदयन जानेके लिये तैयार है। उसके मुंहपर क्लाँतिकी छाया, अपरिसीम व्यथाके भाव थे, नेत्र सूजे हुए थे, जैसे वह रातभर जगा हो। अरुणाने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"बंधु! अगर तुम्हें जाना ही है, तो अभी मत जाओ। नहा-धो लो, रातभर सोये नहीं, थोड़ा विश्राम कर लो, स्वस्थ बनो, तब जाना। इस अभागिनीको अधिक कष्ट मत दो।"

एक पहर बीतने पर राजाकी शिविका अरुणाके द्वारपर पहुँची। पहरेदार और दास-दासी घबड़ा उठे। अरुणाने मिठी हँसीसे राजाकी अभ्यर्थना कर अपने कमरेमें ले जाकर बैठाया। कमरेकी शोभा देख कर राजा मुग्ध होगया और विनीत होकर बोला—"आज तीन दिन हो गये, मेरे किस अपराधके कारण सभासे अनुपस्थित हो ?"

अरुणाने हँसते हुए कहा—"मेरा एक पुराना प्रेमी आया है, उसकी सेवामें लगी रही, आप मुझे क्षमा करें।"

राजाके नेत्र लाल अंगारे जैसे हो गये। कहा—"पुराना प्रेमी ! वह कौन है ?"

सारे कमरेमें अपने मधुर हास्यकी छटा फैलाकर अरुणाने कहा—"महाराज ! वह आपकी ईर्ष्याके योग्य नहीं है। वह एक मठाध्यक्ष है, उदयन उसका नाम है।"

क्रोधके मारे राजाका अङ्ग जलने लगा। खड़ा होकर बोला—"भिक्षु उदयन ! वह ऐसा नीच है ? मठाध्यक्ष होकर ऐसा पाप करता है ? उसको उचित दण्ड—"

अरुणाकी हँसी विलीन हो गई। अब उसको अपनी भूल मालूम हुई। उसने करुणापूर्ण कंठसे कहा—"महाराज !"

राजाने रूढ़-भावसे कहा—"नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, उसका उचित विचार होगा !"

राजा उसी वक्त अपनी शिविकामें जा बैठा। पहरेदार उदयनके पास आकर बोले—"भिक्षु आप कैदी हैं, हमारे साथ दरबार चलिये।"

अरुणा दरवाजेपर आ खड़ी हुई। उदयनने सजल नेत्र होकर कहा—"अरुणा, मैं बुद्ध भगवान्से प्रार्थना करता हूँ, कि तुम्हारी बुद्धि सुधरे, तुम निर्वाणके मार्गपर चलो।"

सारे नगरको मालूम हो गया कि भक्षु उदयन राजनटीके ऊपर आसक्त है। मठाध्यक्षका यह पापाचार भगवान् बुद्धका अपमान है। राज-सभामें विचार होनेकी खबरसे नगर निवासियोंका ताँता बंध गया! राजा अपने मंत्रियोंके साथ सिंहासनपर बैठा। उदयन सिर नीचा किये सभामें आया। उसको सभी लोग धिक्कार दे रहे थे। उदयन भिक्षु ऐसा पतित है? विचारका अभिनय शीघ्र ही समाप्त हो गया। उसको निर्वासन दण्डकी आज्ञा दी गई।

सभा भङ्ग हो गयी। उदयन सिर नीचा किये, हाथमें भिक्षा-पात्र लिये, राजमार्गसे जा रहा था और लोग उसकी हँसी उड़ा रहे थे। धीरे-धीरे नगर पीछे छोड़कर नदी किनारे न्यग्रोध वृक्षके नीचे उदयन आ बैठा। इस समय चिन्ताके भारसे उसका मन अत्यन्त भारी हो रहा था। बुद्धके उपदेश और वाणी वह भूल चुका था। उसकी लक्ष्यहीन दृष्टि, शून्याकाशमें न जाने क्या खोज रही थी। आँखोंसे आँसू बह रहे थे। अन्तमें एक भोजपत्रपर कुछ लिखा। उस पत्रको अपने भिक्षा-पात्रमें रखकर गैरिक वस्त्र उतार डाले और नदीमें स्नान करके अनेक बार उसने बुद्धका ध्यान करना चाहा, पर ध्यान जमता ही न था। नेत्रोंसे अभीतक आँसू निकल रहे थे। जब वह ध्यानमें असफल रहा, तो हाथ-पैर ढीलेकर नदीके प्रबल वेगमें उदयनने अपने शरीरको डाल दिया।

अरुणाको यह पता न था, कि उसकी हँसीका ऐसा भयङ्कर फल होगा। उदयनके सजल नेत्रोंने उसको कातर कर दिया। आज उसके मनमें न जाने कैसी व्यथा आकर उधम मचाने लगी। पालकीमें सवार होकर वह राज-सभामें गई। रास्तेमें उसको बहुत लोग सभासे वापस आते मिले। पालकीसे उतरकर उसने सुना कि उदयनको निर्वासन दण्ड दिया गया है। पालकीको वापसकर वह उसी रास्तेसे आगे बढ़ने लगी, जिससे उदयन गया था। उत्सुक जनता उसकी ओर देखने लगी। घरोंके झरोंकोंसे स्त्रियाँ भी यह दृश्य देख रही थीं। लोगोंको इस बातसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था, कि राज-नटी नंगे पाँव ऐसी कड़ी धूपमें भागी चली जा रही है!

नदी किनारे न्यग्रोध वृक्षकी जड़में उदयनके कपड़े देखकर वह रुक गयी। व्याकुल होकर चारों ओर देखा और बड़े जोरसे पुकारा 'उदयन! उदयन!!'

अचानक उसकी दृष्टि उदयनके भिक्षा-पात्रपर पड़ी, उसने भोज-पत्र उठाकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

"प्रभो, अभागिनी अरुणाको क्षमा करना और उसको निर्वाणकी ओर ले जाना। आत्म-हत्या महापाप है, मैं इस पापका पापी हूं। मेरे ऊपर भी अपने चरणोंकी धूलका स्पर्श कराएँ।"

जीवन भरमें आज पहली बार अरुणाके नेत्रोंमें आँसू आए। उसके मनमें बार-बार उदयनके सजल नेत्रोंकी याद आने लगी। क्षण-मात्रमें एक प्रकारके मधुर-भावसे उसका हृदय भर उठा। उसने धीरेसे कहा-

"आजसे मैं अपना यह शरीर बुद्ध भगवान्के चरणों अर्पित करती हूँ।"

इसके बाद वह उदयनका भिक्षा-पात्र हाथमें लेकर यह कहती हुई अगे बढ़ गई—"बुद्धं शरणं गच्छामि ! धर्मं शरणं गच्छामि ! सङ्घं शरणं गच्छामि !"

माँ !

(१)

जर्मनीके रूर प्रान्तके एक छोटे शहरमें, मजदूरोंके मोहल्लेके बीचो-बीच चार काली-काली दीवारोंके भीतर ग्लक्समान रहता था। ग्लक्समानकी कोठरीमें, सनातनधर्मकी अनावश्यक रूढ़ियोंकी भाँति, एक प्रकारका काला प्रकाश फैला रहता था। इसी कोठरीके एक कोनेमें उसकी माँ भोजन बनाया करती थी। उस कोठरीकी दशा देखकर प्रतीत होता था कि मानो समाज-व्यवस्थाने सूर्यका प्रकाश, ताजी हवा और स्वच्छताको भीतर प्रवेश न करनेका सख्त आर्डर दे रक्खा है। ग्लक्समान रूर प्रान्तकी एक मिलमें काम करता था।

ग्लक्समान मजदूर श्रेणीका था। वह भयङ्कर और कर्कश आवाजके साथ चलने वाली फौलादी मशीनोंको अपनी बिरादरीको समझता

और मिलमें जलने वाले धीमे और असंख्य चिरागोंकी रोशनीमें अपनी ड्यूटीके अनुसार दिन-रात अपना पसीना बहाया करता था।

वह दिन कुछ और ही तरहका था। सारे शहरके मजदूरोंने बड़ी-बड़ी तनख्वाह पानेवाले कर्मचारियों तथा बड़े-बड़े मालदार सेठ-साहूकारोंका सामना करनेके लिये एक सभाकी आयोजना की थी।

इस सभामें ग्लक्समान भी शरीक था। श्रम-जीवियोंका एक बड़ा भारी जुलूस निकालनेकी स्कीमका वह इससे पहलेही, अपने साथियोंमें प्रचार कर चुका था। वह जानता था, कि साल भरमें एक दिन ऐसा आता है, जिस दिन संसार भरके मजदूर इकट्ठे होकर अपने संगठनके द्वारा अपने हृदयका प्रदर्शन करते हैं। उस दिन पूंजीवादके लाड़ले पुत्र और मनुष्योंका खून पीकर मोटे बने हुए राक्षसोंको बतलाया जाता है कि अब तुम्हारे ये ऐसे आरामके दिन बहुत कम रह गये हैं और आगे चलकर सारे विश्वमें श्रमजीवियोंकी ही पताका फहरायगी। ग्लक्समानके मनकी अन्तिम साध भी यही थी।

"ग्लक्स बेटा" उसकी बूढ़ी माँने अपने बेटेकी ओर ध्यान पूर्वक देखते हुए कहा—"अब तू क्या करना चाहता है?"

यद्यपि ग्लक्समानके सूखे और रक्तहीन गलेमें काफी बल नहीं था, पर मजदूरोंके जीवनकी नयी भावनाने उसकी आवाजमें तेजी पैदा कर दी। उसने कहा—"माँ, उनका सामना करनेके सिवा और हम लोगोंसे क्या हो सकता है?"

परन्तु बेटा; तुम्हारे पास शरीरकी ताकतके सिवा और तो कुछ है नहीं। यदि उन्होंने वह भी खरीद ली, तो क्या होगा ?"

ग्लक्समानकी माँ बूढ़ी थी। उसने इस दुनियाँमें चलने वाले सुख-दुःखकी हवाके झोंके खाए थे। जीवनके कड़ुए और मीठे अनेक प्रकारके अनुभव प्राप्त किये थे।

ग्लक्समानने कहा—"मजदूरोंमें असाधारण जागृति उत्पन्न हो गयी है। माँ, ऐसी हालतमें पूंजीवाद मजदूरोंके हृदयको खरीद नहीं सकता।"

माँने कुछ देर रुक कर फिर पूछा—"फिर ?"

"पहली तारीख........"

माँने बीचमें ही रोककर कहा—"ऐं"

"हमारी मजदूर सभाके प्रधान मन्त्रीने एलान किया है कि मई महीनेकी पहली तारीखके दिन सब जगह बड़े-बड़े जुलूस निकाले जाँय।"

"पर बेटा, तेरे भीतर ऐसे-ऐसे गुण कहाँसे आ गये ? पहले तो कभी सपनेमें भी तुझे ऐसी बातें न सूझती थीं। क्या तेरी तरह सभी मजदूरोंके हृदयमें यह आग जल रही है ?"

"हाँ माँ, आजकल सभी मजदूरोंके हृदय कष्ट सहते-सहते जल कर होली जैसे बने हुए हैं। मिलोंके मालिक और बड़े-बड़े धनवानों अपने शौकके लिये मिन्टोंमें लाखों रुपयोंका धूआँ उड़ा देते हैं और मेरे जैसे दिनभर परिश्रम करनेवालों और तेरे जैसी अन्धी बूढ़ी

माताओंको एक-एक टुकड़े रोटीके लिये पहरों इन्तजार करना पड़ता है, तब भी पूरा पेट नहीं भरता ! यह कैसे सहा जा सकता है ?"

माँने काँपती हुई आवाजसे कहा—"बेटा, तू जुलूसके आगे रहेगा तो·······

"तो क्या होगा ? विजय हमारी ही होगी। श्रमजीवियोंकी विजय ही मुझे जीवनका आनन्द देनेवाली है।"

(२)

दूसरे दिनकी शाम हो चुकी थी। मिलके तमाम मजदूरोंने आज हड़ताल की थी। श्रमजीवियोंकी असंख्य टोलियाँ शहरकी सड़कों पर घूम रहीं थीं। सूर्य अस्त होने ही वाला था। आकाशमें लाल—खूनके रङ्गकी—छींट छिटकी हुई थी। मानों मजदूरों और श्रमजीवियोंके दलका अपूर्व और महान् जयध्वज—लाल रङ्गका झंडा-फहरा रहा हो।

इसी समय एक अंधेरी गलीमें, अपनी कोठरीके सामने ग्लक्स-मानकी माँ बैठी थी। वह अपने और अपने इकलौते भोले-भाले बेटेके भविष्यकी बात सोच रही थी। मानों उनके भविष्यकी कथाकी पोथी उसके सामने रक्खी है और वह उसको पढ़ रही हो। अचानक उसके पास पैरोंकी आहट हुई। वह बोली—"ग्लक्स आ गया ?"

लेकिन सामने देखते ही उसका भ्रम जाता रहा। वह दूसरा पड़ोसी मजदूर था। उसने फिर पूछा—"कहो क्या खबर है ?"

"हड़ताल········"

"ग्लक्स कहाँ है, वह नहीं आया ?"

"मैंने तो कहीं देखा नहीं।"

"और क्या खबर है ?"

"कोई खास खबर तो है नहीं।"

" कहीं झगड़ा फसाद तो नहीं हुआ ?"

"मालूम नहीं।"

ठीक इसी समय उस अन्धकारमय वातावरणमें, बीड़ी पीते हुए, काले, मैले और जगह-जगहसे फटे हुए कपड़ोंको, सुरुचिपूर्ण ढङ्गसे पहने हुए गरीबी और मेहनतकी चक्कीमें पिसा हुआ मजबूत कोटिका एक जर्मन मजदूर वहाँ आया। माँने उसकी ओर देखा। देखकर उसके चेहरेपर प्रफुल्लता आई, लेकिन वह ठहरी नहीं, साथके साथ ही चली गयी। वह बोली—"बेटा ग्लक्समान, आ गया ? क्या खबर है ?"

"सब ठीक-ठाक है।"

"पहली तारीख कब है ?"

"कल।"

"तू तो अवश्य जायगा न ?"

"हाँ माँ, जुलूसके आगे-आगे चलूंगा और मजदूरोंका प्राणोंसे प्यारा लाल झण्डा मेरे हाथमें होगा।"

"तू पकड़ा गया तो ?"

"तो डरने और घबरानेकी क्या बात है ?"

बूढ़ी माँ की गढ़ेमें धँसी हुई आँखके कोनेमें आँसू भर आए। सूखे चेहरेपर करुणाके भाव चमकने लगे।

ग्लक्समानने अपनी माँका हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा—"माँ, मेरी प्यारी माँ !"

माँसे बोला नहीं गया। उसको ऐसा मालूम हो रहा था, कि मानों हृदयमें कोई पिंघला हुआ शीशा भर रहा है।

"माँ, यह काम तो मुझे करना ही पड़ेगा। कल मैंने तुझे सब बातें समझा दी थीं न ? हमारे इसी काममें मजदूरोंकी स्वतन्त्रता समाई हुई है।"

कुछ देर चुप रहकर ग्लक्समानने शान्त परन्तु दृढ़ आवाज़से कहा—"माँ, तुम्हारे मुंहपर यह चिन्ताके चिन्ह क्यों प्रकट हो रहे हैं ? जर्मन माताएँ तो अपने अधिकारके लिये बेटेको कालके मुंहमें भेजते हुए भी नहीं हिचकतीं, यह बात बचपनमें तुमने ही मुझे बीसों बार सुनाई होगी, फिर तुम्हारे इस तरह घबरानेका क्या कारण है ?"

माँकी आँखसे आँसू बहने बन्द हो गये। वह अपने बेटेसे आँसू छिपानेके लिये थोड़ी दूर जाकर लौट आई। उसके हृदयका भार हलका हो गया। उसने कहा—"बेटा, मुझे दुःख हो रहा है। मैं तो सिर्फ यह सोच रही हूँ, कि इस कोलाहलपूर्ण पृथ्वीमें, तू 'हुआ न हुआ' हो जायगा। पुलिसवाले तेरे ऊपर लाठी चलायंगे.......और...."

"माँ तुम ठीक कह रही हो। इन लाठियोंसे ही श्रमजीवियोंको स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।"

बूढ़ी माँने आँखके आँसू पोंछकर कहा—"शायद स्त्रियोंको रोना पसन्द है, इसलिये दु:खके समय भी उनके आँसू निकलते हैं और सुखके समय भी। अच्छा, बेटा तू ही जुलूसके आगे रहना।"

(३)

"भाई, आज कौन तारीख है ?"

"क्या आज पहली तारीख है ?"

"क्यों जी, आज क्या जुलूस निकनेवाला है।"

"भाइयो, आज हम लोग साथ ही साथ रहेंगे।"

"आज मईकी पहली तारीख है !"

"आज श्रमजीवियोंके विजयका दिन है।"

"भाइयो, मुबारिक हो ! आजके बाद मजदूरोंके जीवनमें जितनी कल आएँगी, सब प्रसन्नतासे लबालब होंगी।"

"मुबारिक ! मुबारिक !! "

मजदूरोंके गली-मुहल्लोंमें, काल जैसे घोर काले उनके दड़बोंमें इसी किस्मकी बातें हो रही थीं। जगह-जगह टोलियाँ खड़ी थीं।

आज पहली मईका दिन था।

एक बड़े मैदानमें हजारों मजदूर जमा हो रहे थे। चारों ओर उत्तेजना फैली हुई थी। उस समयके वातावरणको देखनेसे प्रतीत होता था कि आग और फूंस तो तैयार है, सिर्फ छोटेसे हवाके झोंके-की कसर है, अब सुलगी—तब सुलगीका मामला था।

ग्लक्समान इस समूहमें अग्रणी होकर भाग ले रहा था। वह एक टूटे हुए बड़े मकानके चबूतरे पर चढ़ गया और बोला—"भाइयो, हमारे सामने जो बड़ी-बड़ी इमारतें और आरामसे रहनेके बड़े-बड़े महल दीख रहे हैं, वे हम लोगोंने ही तैयार किये हैं। इनके वास्तविक मालिक हम लोग ही हैं, पर हमें इनके व्यवहार करनेका कुछ भी अधिकार नहीं है? अब वह वक्त आ पहुँचा है, जब हम अपने अधिकारके लिये कमर कसकर खड़े हों। क्या हमारा अन्धकारपूर्ण; मिलकी चिमनीसे निकलनेवाले धुंएके समान काला जीवन, हमें पूंजी-वादके सामने खड़े होनेको फटकार नहीं रहा है?"

ग्लक्समानकी वाणीमें कसक थी, आवेशपूर्ण उत्साह था और जलती हुई अङ्गारेकी चिनगारी थी। उसने फिर कहा—"भाइयो, हम भी मनुष्य हैं, पर हमारे लिये न्याय नहीं है।"

लोगोंमें उत्तेजना बढ़ती जा रही थी। हजारों आदमियोंकी सम्मिलित आवाजसे ग्लक्समानका स्वागत हो रहा था।

"हमें यह समझ रखना चाहिये कि श्रमजीवियोंकी स्वतन्त्रताका चिन्ह यह 'लाल झण्डा' हम लोगोंने उठाया है।

यह कहकर ग्लक्समानने अपने हाथका झण्ठा ऊँचा उठाया। मजदूरोंके उस विशाल समूहमें पुरुष और स्त्री दोनों ही मिले हुए थे। ग्लक्समान की माँ भी उनमें थी।

"मजदूर जिन्दाबाद!" ग्लक्समानने बड़े जोरसे कहा। हजारों श्रमजीवियोंने उसकी प्रतिध्वनी की। विशाल मानव-मेदनीमें मजदूर जिन्दाबाद गूंज उठा।

"मजदूर भाइयोंका झण्डा ज़िन्दाबाद !"

एकबार फिर वातावरण गर्म होगया।

"तमाम संसारके मजदूर जिन्दाबाद !"

"सारी दुनियाँके मजदूरो एक हो जाओ !"

(४)

मजदूरोंकी इस विशाल सभामें किसी विद्वान् व्यवस्थापकके न होते हुए भी व्यवस्थाकी कमी न थी। मजदूर लोग रलकसमानके इशारेपर चल रहे थे, उनकी आँखोंसे आवेशकी किरणें निकल रही थीं।

"तानाशाहों, सावधान !"

"तुम्हें इस अभिमानका दण्ड अवश्य मिलेगा।"

"अब तो श्रमजीवियोंका राज्य होगा !"

"मजदूर जिन्दाबाद !"

वातावरण बदल रहा था। तमाम मजदूरोंके हृदय आनंदसे नाच रहे थे।

इसी समय आवाज आई-"पुलिस आ गयी !"

"पुलिस आ गयी !"

पुलिस अफसरने कहा—"सब लोग भाग जाओ।"

"यह कैसी गड़-बड़ मचा रक्खी है !"

"भागो, जल्दी भागो !"

लोगोंने पुलिसके हुक्मकी जरा भी परवा न की। सिपाही सशस्त्र थे और अफसरके हाथमें पिस्तौल थी।

ग्लक्समानने कहा—"प्यारे भाइयो, हमारा निश्चय अटल है! मजदूरोंका झण्डा जिन्दाबाद!"

विशाल समूहने गरजकर कहा—"लाल झण्डा जिन्दाबाद!"

"मजदूर जिन्दाबाद!"

प्रत्येक दिशासे इस आवाजकी प्रतिध्वनि आ रही थी।

इसी समय ग्लक्समानकी बूढ़ी माँ आगे आई। उसके पैर काँप रहे थे और आँखोंमें आँसू थे। उसने धड़कते हुए हृदय और काँपते हुए हाथसे ग्लक्समानका हाथ पकड़ा। फिर दिलको मजबूतकर अपने बूढ़े गलेसे चिल्लाकर कहा—"नवयुवकों और जवानों! चाहे कितनी ही पुलिस आ जाय, तुम अपने निश्चय पर विश्वास रक्खो, पहाड़की तरह अटल बने रहो।"

इतना ही कहनेसे बूढ़ीकी आवाज फट गयी। ग्लक्समानके हृदयमें दूना उत्साह उत्पन्न होने लगा। उसने कहा—"भाइयो, मेरे प्यारे साथियो, तुम अपने मार्गसे हटना नहीं। हमें अभी जुलूस निकालना है! हमारे मार्गमें कठिनाइयोंकी कमी नहीं रहेगी, पर हमें स्वतन्त्रता तभी मिलेगी, जब हम हँसते हुए, उन कठिनाइयों, आपत्तियों, और विघ्नोंको पार कर जायेंगे। इस मिलकी चिमनीसे जो धुंआँ निकल रहा है, वह हम लोगोंकी उत्साह शक्तिका धुंआँ है। पूंजीवाद हम लोगोंके जीवनको भी इस धुंएके समान काला बना डालता है।"

क्षणभर उस विशाल श्रमजीवी-सम्प्रदायकी ओर देखकर फिर कहा—"पहली मई जिन्दाबाद !"

चारों ओरसे बार-बार आवाज आने लगी "पहली मई जिन्दाबाद !"

धीरे-धीरे लोग जुलूसके आकारमें हो गये। झण्डा आगे किया गया। गीत गाये जाने लगे। बार-बार जयघोष होने लगा, गीतोंकी भाषा नयी और भाव भी नये थे। पुरानी संस्कृतिकी छाया तक उनके पास न फटकती थी।

अन्धकारपूर्ण निर्जन पथमें, पूंजीवादके बोझसे दबे हुए भूखके आक्रमणसे चक्कर खाने वाले भुक्कड़ साम्राज्यवादके भूतसे डरे हुए, अधिकारियोंके क्रोधी स्वभावकी गन्दी गालियाँ सुनकर घबड़ाए हुए श्रमजीवियोंमें आज नयी जागृति उत्पन्न हो रही थी !

"पुलिस !"

"पुलिस आ गयी है, भाइयो !"

"आह ! यह मोटा सार्जन्ट भी आ गया।"

"अरे पुलिस वालो !........"

"देखो न ये लोग हमें धमकी दे रहे हैं !"

जुलूसके लोगोंमें बेचैनी पैदा हो गयी। पीछेसे पुलिस अफसरकी आवाज आई—"सब लोग भाग जाओ !"

लोगोंमें कोलाहल होने लगा। इसी समय ग्लक्समानने गरजते हुए कहा—"चलो आगे बढ़ो। मजदूर जिन्दाबाद !"

"आगे बढ़ो—आगे बढ़ो !"

जुलूस आगे चला। वातावरण धीरे-धीरे गम्भीर होता जा रहा था, कोलाहल वैसा ही बना था। झण्डा हवामें फड़फड़ाहटके शब्दके साथ उड़ रहा था।

जिस रास्तेसे यह जुलूस जाने वाला था, उसके सामने पुलिस जमी हुई थी। आगे बढ़ते हुए जलूसको देखकर पुलिस अफसरने चिल्लाकर कहा—भाग जाओ ! आगे बढ़नेकी मुमानियत है !"

ग्लक्समान झण्डा हाथमें लिये हुए सबसे आगे-आगे चल रहा था। पुलिस अफसरने हुक्म दिया—"झण्डा छीन लो।"

तीन पुलिसमैंन आगे बढ़कर झण्डा छीनने लगे। ग्लक्समानने झटकेके साथ उनको पीछे धकेलकर झण्डा और भी ऊपर उठा लिया। वह और भी तेज हवामें फहराने लगा।

अफसरने जमीनपर पैर पटककर कहा—"पकड़ लो इसको !"

पुलिस वालोंने ग्लक्समानसे झण्डा छीनते हुए उसका हाथ मरोड़ दिया। पुलिसके हाथमें पहुँचकर झण्डा धीरे-धीरे अदृश्य हो गया।]

"माँ, मैं जा रहा हूँ !"

(५)

मजदूरोंके विशाल समूहमें आतङ्क और बेचैनी फैल गयी। चारों ओर अस्पष्ट कोलाहल होने लगा। सभी लोग ग्लक्समानके विषयमें कुछ न कुछ कह रहे थे। पर ग्लक्समान कहाँ था ?

इसी समय एक ओरसे आवाज आई—"भाइयो, निराश होनेकी कोई बात नहीं है। मजदूर जिन्दाबाद !"

पैरके अँगूठेके सहारे ऊपरको उठकर ग्लक्समानकी बुढ़िया माँने अपने इकलौते बेटेको पकड़कर ले जाते देखा। उसका चेहरा त्यागकी कान्तिसे दमक रहा था। माँने कहा—"भाइयो" लोग प्रेम और आदरके भावसे माँकी ओर देखने लगे। वह बोली—;'भाइयो ! मज़दूरोंका यह लाल झण्डा हमेशा अमर रहेगा। सामने आओ देखें ये कितनोंको पकड़ते हैं।"

यह कहकर बुढ़ियाने अपनी जेबसे छोटासा लाल कपड़ा निकाल-कर अपनी बुढ़ापेकी सहारा लाठीके कोनेपर बाँधकर उठाया। एक बार फिर 'लाल झण्डा' हवामें फहराने लगा।

सारे मजदूर मण्डलने सागरकी तरह गम्भीर आवाजसे कहा--"मजदूर जिन्दाबाद !"

"मजदूर जिन्दाबाद !"

इस समय बहुतसे नवयुवक और जवान आदमी सामने आए। सभी झण्डा अपने हाथमें लेनेके लिये आग्रह करने लगे। एक मजदूर बोला—"वाह ! माँ तो आज कमालकी वीरता प्रकट कर रही है। यह बूढ़ी नहीं जवान है। इसकी आँखोंसे आग निकल रही है।"

"देखो-देखो, इसका जोश तो देखो !"

चारों ओर माँके विषयमें चर्चा होने लगी।

माँने झण्डा और भी ऊपर उठाकर जोरसे कहा—"सारे संसारके मजदूरो, एक हो जाओ !"

इसी समय अफसरने दूसरा हुक्म दिया। माँ झण्डा लिये सबसे आगे थी। उसके सफेद बालोंके साथ जर्मनीका चञ्चल पवन क्रीड़ा

कर रहा था, और परिश्रमी जीवनकी गौरवशील बुढ़िया अपने प्रकाशमय मुखसे , अचल और अटल भावसे मोरचेपर डटी हुई थी।

"यह झण्डा छीन लो।"

सिपाही झण्डा लेनेको आगे बढ़ा। बुढ़ियाने उसका सामना किया। अफसरने फिर कहा—"सब लोग अपने-अपने घर चले जाओ!"

मजदूर जरा भी नहीं हटे। अफसर बोला—"चले जाओ नहीं तो........"

"बुढ़िया झण्डा दे दे।"

माँने झण्डा नहीं दिया। विजयी वीरकी तरह उसके हाथमें झण्डा फहराता रहा।

इसी समय सिपाहीकी लाठी माँके ऊपर, भरपूर हाथसे पड़ी। उसके बेहोश होकर गिरनेसे पहलेही दूसरे मजदूरने पकड़ली। मजदूरोंकी भीड़ उत्तेजित हो उठी और पुलिस वालोंकी ओर बढ़ने लगी।

"माँ! माँ!"

चारों ओरसे यही शब्द सुन पड़ रहे थे।

पासकी ही सड़कपर खड़ा हुआ एक प्रसिद्ध समाचारपत्रका नवयुवक जर्मन रिपोर्टर, घटना की रिपोर्ट ले रहा था।